द्वितीय अध्याय

गुप्तजी के काव्य में दाम्पत्य जीवन का चित्रण

गुप्तजी के काव्य में दाम्पत्य जीवन का चित्रण

परिवार को समाज का लघु संस्करण माना गया है। परिवारों के संघटन को ही समाज कहा जाता है और इसीलिए पारिवारिक सुख-शान्ति के द्वारा ही सामाजिक सुख-शान्ति का मूल्यांकन किया जाता है। परिवार-व्यवस्था का सन्तुलन और संगठन इस बात पर निर्भर रहता है कि पति-पत्नी के पारस्परिक संगठन कैसे हैं। पति और पत्नी का पारस्परिक सहयोग उन्हें प्रगति की दिशा में अग्रसर करता है, क्योंकि नारी और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। नारी और पुरुष के सम्बन्धों के तनाव एवं संघर्ष के फलस्वरूप अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। परम्परानुगत जीवन-मूल्य एवं सामाजिक आदर्श जीवन का क्रमा और प्रगति की ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसलिए हमारे समाज में आश्रम धर्म की कल्पना की गई है। जहाँ आश्रम का स्खलन होता है वहीं पति-पत्नी के सम्बन्ध में विघटन की समस्या उठती है। मैथिलीशरण गुप्त तत्वत: पारिवारिक जीवन के कवि हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि - " भारतवर्ष के सभी मर्यादा-प्रेमी कवि परिवार के कवि रहे है।"।
गुप्त जी परम्परा में दृढ़ निष्ठा रखते हुए भी समय के साथ चलते हैं। वे परम्परा और प्रगति में सामंजस्य स्थापित करके मानवीय चेतना को प्ररोचित करने का प्रयास करते हैं। उनके सभी आदर्श दम्पति सम्मिलित परिवार के सदस्य हैं। प्राय: सभी प्रबन्ध काव्यों में गुप्त जी का आदर्श समाज सम्मिलित परिवारों के संघात के रूप में ही चित्रित हुआ है। उन्होंने इसका नैसर्गिक विस्तार भी चित्रित किया है। उनके द्वारा चित्रित समाज के सदस्यों में परिवार के समान सौमनस्य तथा आन्तरिकता है। परिवार के अंगभूत विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे को सामाजिकों के समान पारस्परिक सापेक्षता में देखते हैं। उनकी दृष्टि में व्यक्ति का विकास संयुक्त परिवार तथा परस्पर सुगठित समाज में ही सम्भव है। मनोविज्ञान के पण्डित भी उदात्त चरित्र के निर्माण के लिए सम्मिलित परिवार

1- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य; सन् 1955 ई०; पृ० - 443

की आवश्यकता का अनुभव करते हैं"।[1] गुप्त जी की दृष्टि में आश्रम व्यवस्था तथा संयुक्त परिवार जैसी संस्थाएँ हैं जिन्हें लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनों को सुखी बनाने के निमित्त भारतीय प्रतिभा का अनन्य घटक माना जा सकता है। इनमें विश्वास करने वालों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह भौतिक जीवन का तिरस्कार करें अथवा उसे उपेक्षणीय मानें। पति और पत्नी के सम्बन्ध को पारिवारिक जीवन में सर्वाधिक पवित्र माना गया है। उनके सम्बन्धों की भित्ति धर्म पर आधृत है। कवि की दृष्टि में भारतीयों का विश्वास है कि धर्म ही पारिवारिक चक्र की धुरी है।

"धर्म का उद्देश्य चिन्तन या भाव-समाधि नहीं है, अपितु जीवन की धारा के साथ एकात्म्य स्थापित करना और इसलिए सृजनात्मक प्रगति में भाग लेना है। धर्मपरायण मनुष्य उसके ऊपर उसकी भौतिक प्रकृति या सामाजिक दशाओं द्वारा थोपी गई मर्यादाओं से ऊपर उठ जाता है और सृजनात्मक उद्देश्य को विशालतर बनाता है। धर्म एक गत्वर (गत्यात्मक) प्रक्रिया है, सृजनशील तीव्र मनोवेग के नवीकृत प्रयास, जो असाधारण व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करता है और जो मानव-जाति को एक नए स्तर तक उठाने के लिए प्रयत्नशील है। यदि सामाजिक निश्चेष्टतावाद, जो रहस्यवाद का परिणाम बताया जाता है, बुरा है, तो आधिक्यवाद भी उतना ही बुरा है। मार्क्स का मुख्य इरादा यह है कि वह हमें स्वयं को समष्टि के आध्यात्मीकरण के लिए समर्पित कर देने को प्रेरित करे। मानवीय आत्मा को स्वतंत्रता दिलाकर हम केवल उस एकमात्र पद्धति द्वारा संसार को उत्कृष्टतर बनाते हैं, जिससे कि उसे बनाया जा सकता है, और वह है आन्तरिक पद्धति"।[2]

पति-पत्नी के पारस्परिक अनुराग के सम्मुख संन्यास अथवा वैराग्य को भी तुच्छ माना गया है, किन्तु यह अनुराग जागतिक विषयैषणा से सर्वथा भिन्न है। विषयैषणा उन्हें परस्पर के निमित्त विलास के मांसल उपकरण मात्र के रूप में निराहृत करके छोड़ देती है। भारतीय संस्कृति भोग का समर्थन करते हुए भी विषयोन्मुखता का प्रतिपादन नहीं करती। अनुरागमय भोग का मांगलिक पक्ष उन्हें उदात्त

---

[1] -- फ्रान्सीस गाल्टन- एनक्वायरिस इन्टू ह्यूमेन फेकल्टीज एण्ड इट्स डेवलपमेन्ट, द्वि० आ०, पृष्ठ-213

[2] -- डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन - धर्म और समाज : पृष्ठ 79

वृत्तियों से अन्वित तथा अनुप्राणित करता रहता है । मात्र विषय-भोग की विकृत परम्परा का अनुमोदन हमारी परम्परा के प्रतिकूल है । पति-पत्नी के पारस्परिक अनुराग और दीप्तिमय उद्वेग को नैसर्गिक उपजात कृत्य के रूप में भोगेषणा को स्थान दिया जा सकता है । गुप्त जी के अनुसार शारीरिक भोग उदात्त अनुराग की ओर नहीं ले जा सकता । अतएव जो विवाहित जीवन का काम्य अथवा लक्ष्य भोग मात्र मानते हैं वे सर्वथा भ्रान्त हैं । भोग कहां उपजात प्राप्ति और कहीं (अधिक से अधिक) साधन के रूप में स्वीकार्य हो सकता है, साध्य के रूप में नहीं । गुप्त जी के अनुसार पत्नी पति के कार्यों में समभाग लेने वाली - अर्द्धांगिनियाँ हैं। आर्य स्त्रियों के लिए कवि लिखता है ----

"निज स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेतीं न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे,
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धांगिनी सुकुमारियाँ,
तात्पर्य यह -- अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियाँ ।।"१

सीता अर्द्धांगीत्व के बल पर ही वन गमन की अनुमति के लिए हठ करती हैं । वे राम को एकाकी वनवास के लिए नहीं जाने दे सकतीं । कोई नगर में रहे, राज प्रासाद में रहे, विदेश में रहे, वा वन में रहे, उसे गृहस्थ जीवन की अवधि में एकाकी रहने का अधिकार नहीं है । पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक होते हैं । एक दूसरे के प्रति उनके कर्तव्य होते हैं । ऐसी अवस्था में सीता को उसके अधिकार एवं कर्तव्य से वंचित रखने का क्या औचित्य हो सकता है । उन्हीं [redacted] कारणों से जनकनन्दिनी वन में साथ ले जाने के लिए राम से विनय पूर्वक आग्रह करती है :-

"मातृ-सिद्धि, पितृ-सत्य सभी, मुझ अर्द्धांगी बिना अभी --
है अर्द्धांग अधूरे ही, सिद्धि करो तो पूरे ही ।"२

---

१ - मैथिली शरण गुप्त - भारतभारती : अष्टादश संस्करण : पृ० सं० ११

२ - मैथिली शरण गुप्त - साकेत, संस्करण संवत् २००५, पृ० सं० ८२

पत्नी पति की अर्द्धांगिनी होने के कारण उसके सुख एवं दुःख में समान रूप से सहयोग देती है। सीता वन के समस्त दुःखों के विषय में जानकर भी पति के संग जाना चाहती है। पति-पत्नी के गहन सम्बन्ध को कवि ने सीता के मुख से कहलवाया है :----

"तुमको दुःख तो मुझको भी,
तुमको सुख तो मुझको भी,
सुख में आ-आकर घेरूँ,
संकट में अब मुँह फेरूँ।" १

सीता सच्चे अर्थों में पतिव्रता नारी है तभी तो वह कहती है :-----

"होते हो कामनगामी
उसमें बड़ी भाग मेरा
करो न आज त्याग मेरा।" २

सीता राम से कहती है कि वन में तुम मेरे समीप होगे। राज्य के समस्त सुखों को प्राप्त करके भी मैं तुम्हें यहाँ नहीं पा सकती। उसके कथन से पति-पत्नी के दृढ़ सम्बन्ध का पता चलता है, वह कहती है :--------

"वन में होगा सुख-मूल मरा
अथवा कुछ भी न हो वहाँ,
तुम तो हो जो नहीं यहाँ।"

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि०, पृ० -- ११७
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि०, पृ० -- ११७

मेरी यही महामति है
पति ही पत्नी की गति है।"१

गुप्त जी के काव्य का अनुशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐतिहासिक अथवा पौराणिक युग के समाज के चित्रांकन के लिए प्रयत्नशील रहने पर भी वे बरबस समकालीन समाज को अवतारणा भी करते चलते हैं। इसी प्रक्रिया में पारस्परिक आदर्शों का तुलना में समकालीन समाज की जो त्रुटियाँ और विसंगतियाँ उन्हें खटकती हैं, उनका समालोचना भी वे साथ ही साथ करते चलते हैं। समय-समय पर पारस्परिक दाम्पत्य-प्रेम के आदर्शों का यशगान अथवा उदात्तीकरण से भी वे विमुख नहीं होते। उनके काव्यों में पात्र के रूप में व्यक्ति अनिवार्य रूप से विद्यमान है। उन्होंने व्यक्ति को उसकी एकान्तिक सत्ता में कभी नहीं देखा। वे व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग मानते हैं। इसलिए उनके काव्यों में दम्पति सर्वत्र समाज-चेतना से अनुप्राणित हैं। समाज के अभिन्न अंग होने के कारण उनके द्वारा चित्रित दाम्पत्य-जीवन प्रतीक की अपेक्षा नहीं रखता। कई स्थलों पर उनकी प्रतीक योजना वृहत्तर उद्देश्यों से अनुप्राणित हैं। वे समाजीकृत सामान्य विशेषताओं को दम्पति के रूप में चित्रित पात्रों के अन्तर्गत पर इस प्रकार आरोपित करते हैं कि वे विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती हैं। फलतः उनके प्रतीकात्मक दम्पतियों में कहीं भी एकरूपता व प्राणहीन स्थिरता दृष्टिगत नहीं होती। दम्पतियों के विषय में भी कहा जा सकता है कि उनके लिए "वैयक्तिक और सामाजिक, दोनों ही पहलू आवश्यक हैं। व्यक्ति को कभी भी समाज द्वारा या अनेक मध्यवर्ती समूहों में से किसी के द्वारा पूर्ण समावेशन (अपने साथ संयुक्त कर लेने) का वशवर्ती नहीं होना चाहिए। समाज की शक्ति सबल व्यक्तियों की शक्ति से ही बनती है। यदि व्यक्तित्व जाता रहे, तो समझो कि सब कुछ जाता रहा। आधुनिक मनुष्य को बिना अपनी सामाजिक चेतना या

---

१ -- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि०, पृष्ठ - १२०

अन्तःकरण को सँवारें, अपने अन्दर व्यक्तिगत पहल करने के एक स्रोत को खोज निकालना चाहिए ।१

इस व्यक्तित्व के संवर्द्धन का सर्वाधिक उत्कृष्ट उपाय है अनुराग के संवेग को उभाड़ना । जीवन का सर्वोत्कृष्ट विशेषाधिकार, जिसका उपयोग दम्पति विश्व की सर्जनशील ऊर्जा के धारण द्वारा करते हैं : हमारी चेतना को क्रियान्वित और हमारे आनन्द को असीम बना देता है । उनके पारस्परिक संसर्ग से सृष्टि का कण-कण आनन्दमय हो उठता है । स्त्री के संसर्ग से पुरूष का जीवन स्वर्गीय आनन्द से उद्वेलित हो उठता है --

भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त भी,
शून्यता नभ की, सलिल-आवर्त भी,
प्रेयसी, किसके सहज-संसर्ग से,
दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से । २

इसी प्रकार नारी को भी पुरूष के आन्तरिक सहयोग की एकान्त आवश्यकता प्रतीत होती है ----

खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम :
आन्तरिक सुख-दुःख हम जिसमें धरें
और निज भव - भार यों हलका करें ।३

---

१ - डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन - धर्म और समाज - पृष्ठ - ७९
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, संवत् २०२५, पृष्ठ - २३
३ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, संवत् २०२५, पृष्ठ - २३

"गृहस्थ जीवन का प्राण है दाम्पत्य, क्योंकि मनुष्य के भाव- कोष पर सबसे व्यापक और गहरा अधिकार उस व्यक्ति का होगा जो उसके सबसे अधिक निकट है। इस दृष्टि से जीवन में सेक्स (काम) की प्रमुखता होने के कारण स्त्री-पुरुष का नैकट्य ही सर्वाधिक ठहरता है। उनके लिए मानसिक एकता के साथ शारीरिक एकता भी तो अनिवार्य हो जाती है। मर्यादावादियों ने इस सम्बन्ध को दाम्पत्य में ही सीमित कर दिया है, क्योंकि इस एकता का विकास मर्यादा-बद्ध होकर ही — अर्थात् विवाह-सम्बद्ध होकर ही — हो सकता है।.... स्त्री, पुरुष का सम्बन्ध अथवा रति, अथवा शृंगार ही मनुष्य-जीवन की प्रमुख भावना है और मन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसमें रमता है। १

साकेत का आरम्भ नव-दम्पति लक्ष्मण उर्मिला के हास-परिहास, वाग्विनोद एवं रसिकता से होता है। दाम्पत्य गार्हस्थ्य जीवन का मधुर पक्ष है। उर्मिला के प्रति लक्ष्मण के वचन दाम्पत्य सुख को व्यंजित करते हैं :------

"तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा।"२

परिवार के मुख्य सदस्य राजा दशरथ कैकेयी के क्रोध के प्रणय-मानसमक बैठे :---

"तुम्हारा धन है मान अवश्य
किन्तु हूँ मैं तो यों ही वश्य।"३

---

१ - डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन, प्रथम संस्करण सन् १९४० ई०, पृष्ठ - २९
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पृष्ठ - 2031 वि० 2031
३ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पृष्ठ - 206 - 21

और समझती है :----

अम्ल होकर भी मधुर रसाल,
गया निज प्राय - कलह का काल
आज होकर हम रागातीत,
हुए प्रेमी से पितर पुनीत । १

माँगना हो जो तुमको आज
माँग लो, करो न कोप, न लाज
तुम्हें पहले ही दो वरदान
प्राप्य है फिर भी क्यों यह मान । २

साकेत में पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त मधुर है । दोनों पारस्परिक प्रेम परिहास, विनोद करते हैं । उर्मिला मधुर व्यंग करता हुई प्राणपति से कहती है " क्या आप जग गए आपका प्रेम स्वप्नों के खजाने में कब से रम गया?

.... " अभी तुम जग गए
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गए!" ३

आधुनिक समाज में वाक्-चातुर्य शिष्टाचार के स्पृहणीय गुणों में माना जाता है । उक्त कथन से उर्मिला में वाक्-चातुर्य का पता चलता है । उसमें आधुनिक युग के

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृष्ठ - ५१
२ - साकेत - मैथिलीशरण गुप्त " पृष्ठ - ५२
३ - साकेत - मैथिलीशरण गुप्त " पृष्ठ - २६

प्रभाव की झलक देखने को मिलती है।

लक्ष्मण प्रियतमा के मधुर व्यंग का उत्तर हास्यपूर्ण ढंग से ही देते हैं। वे कहते है जबसे तुम्हारी जैसी मोहित करने वाली सुन्दरी ने प्रेम का मन्त्र पढ़कर मुझे स्पर्श किया है और तुम्हें जबसे जागरण भला मालूम देने लगा है तभी से मुझे ये स्वप्न की निधियाँ अच्छी लगने लगी है। अर्थात् मैं देर से जगने लगा हूँ —

" मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"[1]

नव परिणीत पति-पत्नी का एक अलग जीवन होता है। उनका एक पृथक् संसार होता है जिसकी परिधि में पति-पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य का समावेश नहीं हो पाता। वे परस्पर अनेक प्रकार के केलि-प्रसंगों और वाग्विलास में डूबे रहते हैं। अपने आनन्द का वे अनेक माध्यम बनाते हैं जिनमें पारस्परिक हार-जीत, उत्तर-प्रत्युत्तर, प्रतिस्पर्धा, भाव-प्रवणता, हावभाव एवं कामकलाएँ सम्मिलित रहती हैं। प्रस्तुत व्यंग्य-संवाद उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में इसी का दृष्टान्त है।

संयोग एवं वियोग दोनो ही स्थितियों में गुप्त जी ने पति-पत्नी के प्रेम को चित्रित किया है। " संयोग में शारीरिकता अनिवार्य है और उसका तिरस्कार करना प्रकृति के नियमों का तिरस्कार करना है।"[2] साकेत में इस प्रकार के चित्र भी उपलब्ध हैं। उर्मिला अपनी सखी से पूर्व घटित एक बात कह रही है

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; सं0 2025 वि0 ; पृष्ठ - 30

2- डा0 नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृष्ठ - 35

आए एक बार प्रिय, बोले - एक बात कहूँ,
विषय परन्तु गोपनीय सुनो कान में ।
मैंने कहा कौन यहाँ बोले प्रिये, चित्र तो है,
सुनते हैं वे भी राजनीति के विधान में ।
लाल किये कर्णमूल होठों से उन्होंने कहा --
क्या कहूँ सगदगद हूँ मैं भी छद - दान में,
कहते नहीं हैं करते हैं कृति सजनी मैं
झांक के भी रीझ उठी उस मुस्कान में ।१

डा० नगेन्द्र के अनुसार -- यह गोपनीय रहस्य और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी मनोहर है :------

कामिनोऽपि रहस्याख्यानं व्याजचुम्बनमेव प्रधानम्

के अनुसार प्रिया विदग्ध नायक की यह करतूत सोचकर भी रीझने योग्य थी ।२ प्रेम-वश एक स्थान पर लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं कि मैं तुम्हारा दास हूँ । उर्मिला तत्क्षण विनोद और तर्क से पूर्ण गूढ़ वचन द्वारा उत्तर देती है :------

"दास बनने का बहाना किसलिए
क्या मुझे दासी कहाना इसलिए ।"३

उर्मिला एक ओर पति की श्रेष्ठता को सुरक्षित रखती है, दूसरी ओर अत्यन्त विनम्र ढंग से यह भी कह देती है कि आप चाहे कुछ भी बनें, मुझे दासी बनना पसन्द नहीं।

---

१ -- द्वारिका प्रसाद सक्सेना - साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, प्र० सं० १९६१ पृष्ठ - १३६
२ -- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन, प्रथम संस्करण १९४० - पृष्ठ - ३६
३ -- मैथिली शरण गुप्त - साकेत - सं० - २०२५ वि०, पृष्ठ -

लक्ष्मण को अन्त में परास्त होना पड़ता है एवं वे कहते हैं :----

"तुम रहो मेरी हृदय देवी सदा ।
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय सेवी सदा ।" १

आदर्श हिन्दू समाज में विवाह की प्रथा की ऐसी कल्पना की गई है, जिससे पति-पत्नी मनोवैज्ञानिक, जातीय और मानवीय उपकरणों का सामंजस्य अपने जीवन में स्थापित कर सकें । वे उसके आधार पर उत्तरदायी और परिपक्व प्रेम को विकसित करते हैं।वे केवल अपनेअस्तित्व की चिंता नहीं करते, अस्तित्व को सार्थकता, प्रगतिशीलता एवं सुनियोजित लक्ष्मोन्मुखता भी प्रदान करना चाहते हैं । इस प्रक्रिया में नारी एक ऐसे आन्तरिक सहयोगी की अभिलाषा तथा अन्वेषण करती है जो धर्म विहितपथ मार्ग पर चलकर उसकी जीवन की यात्रा को सफल, सुफल एवं सार्थक बना दे । गुप्त जी की उर्मिला नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हुई कहती है :-----

"सोचती है एक आश्रय मात्र हम
चाहती हैं एक तुम सा पात्र हम :
आन्तरिक सुख-दुःखम जिसमें धरें,
और निज भव - भार भी हलका करें । २

और इसके लिए यशोधरा इतने से ही सन्तुष्ट है कि उसके हाथों की चार चूड़ियां एवं मस्तक के सिन्दूर-बिन्दु का सौभाग्य उसे आजीवन प्राप्त रहे :-----

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० -- पृष्ठ - २६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३२

चार चूड़ियाँ हों हाथों में पड़ी रहें चिरकाल ।
\+ * + +
बस, सिन्दूर-बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल । १

दम्पत्ति प्रेम का इससे अच्छा व्याख्यान और क्या हो सकता है । कण्टकाकीर्ण जीवन को पार करने के लिए दोनों के सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक है । भारतीय सामाजिक परम्परा के अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना जाता है । डा० नगेन्द्र का इस सम्बन्ध में कहना है -- "स्त्री और पुरुष का यह सम्बन्ध अनादि काल से अटूट इसलिए रहा है कि जीवन में दोनों को एक ऐसे साथी की आवश्यकता का अनुभव होता है जिससे वे अपने सुख-दु:ख कह-सुन सकें । स्त्री में हृदय का प्राधान्य होने के कारण उनको ऐसे पात्र की आवश्यकता अधिक रहती है जिसमें वह अपने तन-मन की भावुकता उड़ेल सकें" ।२

उर्मिला को प्रोषित्पतिका के रूप में चित्रित करके कवि ने प्रेम में वियोगावस्था के महत्त्व को दर्शाया है । पत्नी विरह में पति को और अधिक स्मरण करती है । "विरह प्रेम का तप्त स्वर्ण है । वेदना की अग्नि में तपकर प्रेम की मलिनता गल जाती है और जो कुछ शेष रह जाता है वह एकान्त में शुद्ध और निर्मल होता है । विरह में मिलन से अधिक गांभीर्य और स्थिरता होती है ।"३ उर्मिला प्रिय का स्मरण करती हुई हेमन्त ऋतु से कहती है : ------

सी सी करती हुई पार्श्व में लख कर जब तब मुझको
अपना उपकारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको । ४

\---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा, संस्करण संवत् २००७, पृष्ठ ३४
२ - डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन : पृष्ठ - ३१
३ - डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन : प्रथम संस्करण सन् १९४० ई० : पृष्ठ - ६९
४ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : २०२५ वि० : पृष्ठ - ३०५

साकेत के इन स्थलों पर कुछ प्युरिटन समीक्षकों ने आक्षेप किये हैं। उनका कहना है कि इस शृंगार में कामुकता की गंध है, परन्तु वास्तव में ये चित्र सर्वथा स्वस्थ शरीर-सुख की अभिव्यक्ति करते हैं।[1]

भारतीय सती नारी प्रियतम के कर्तव्य पथ का बाधक नहीं बनाना चाहती। वह सहर्ष उसके विरह को मान लेती है। प्रियतम के मंगलार्थ अपने सुख का चरम त्याग भी कर सकती है। लक्ष्मण के वन-गमन का समाचार सुनते ही उसके हृदय में अपनी बहन की भाँति वन-गमन की स्पृहा होती है, किन्तु लक्ष्मण की विवशता को देखकर अपने हठ का वह त्याग कर देती है एवं अपने हृदय को सांत्वना देती हुई कहती है :-

" हे मन
तू प्रियपथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा ।
हो अनुराग विराग भरा ।
शोक भार से चूर्ण न हो ।
भ्रातृ - स्नेह - सुधा सरसे,
भू पर स्वर्ग - भाव सरसे ।"[2]

उर्मिला के इस कथन में कितना निस्वार्थ-त्याग, कितना आत्मबलिदान, कितना धैर्य एवं कितना विश्व तथा परिवार के प्रति कल्याण का भाव भरा हुआ है, क्योंकि वह अपने इस त्याग एवं बलिदान द्वारा भाई-भाई में स्नेह का भाव उद्दीप्त करना चाहती है, पृथ्वी पर स्वर्ग भाव भरना चाहती है और अपने प्रियतम के साधना-पथ में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित करना नहीं चाहती।[3]

1- डा० नगेन्द्र- साकेत एक अध्ययन : प्रथम संस्करण सन् 1940 ई०; पृ० - 36
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; सं० 2025 वि० ; पृष्ठ - 110
3- द्वारिका प्रसाद सक्सेना - साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन; सन् 1961 ई० पृ० - 138-139

राम ने अपने त्याग पूर्ण तथा नीति-युक्त कार्यों से अयोध्यावासियों की श्रद्धा और प्रेम को जीतकर वन को भी रमणीय स्थान बना डाला, उधर भरत ने भी अग्रज के अनन्य प्रेम के कारण महलों में भी वन के समान जीवन व्यतीत करने का व्रत ले लिया। वधू उर्मिला ने सीता के प्रेम के वशीभूत होकर अपने महल और उद्यान को भी वनवास के जीवन के समान बना दिया। भारतीय नारियों की अभिलाषा होती है कि वे सुख और दुःख दोनों अवस्थाओं में पति की सह भागिनी बने। वनवासी लक्ष्मण जब वन की यातनाओं और एकांतताओं को झेलते हुए जीवन व्यतीत कर रहे होंगे तब उर्मिला महलों में रहकर राजकीय सुखों में कैसे लिप्त रह सकती थी। युवावस्था के आरम्भिक आवेश और विवाहित जीवन के प्रथम चरण में ही विरहाघात से व्याकुल हो जाने वाली प्रेमिका अपने को विचित्र स्थिति में पाती है। उर्मिला की दशा अवर्णनीय है। कभी तो वह जाग्रत अवस्था में अपने प्रियतम लक्ष्मण की अवधि के समय को भूलकर उन्हें अपने पास बुलाती हुई कहती है :- " आओ परन्तु स्वप्न में " अपने पति को पास देखकर वह सचेतन होकर कहती है - " जाओ " :-

" भूल अवधि-सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी- " आओ "।
किन्तु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर- " जाओ।"[1]

अपनी इन पंक्तियों के लिए कवि ने एक स्थान पर लिखा है कि उन्होंने तो यहाँ मात्र यही कहना चाहा था कि जागते में उर्मिला भले ही अवधि की सुध-बुध भूलकर पीड़ा के कारण कभी अपने प्रिय को पुकार उठती थी, परन्तु स्वप्न में भी वह अवधि के पहले लक्ष्मण का आना नहीं चाहती थी। यदि कभी वे स्वप्न में आ भी जाते तो " जाओ " कहकर वह तुरन्त जाग उठती थी।

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; सं0 2025 वि0 ; पृष्ठ - 268

इन पंक्तियों के विषय में डा० नगेन्द्र का मत है कि इनमें उर्मिला की जटिल मनोदशा का चित्रण है । यहाँ आदर्श और कामना के बीच में संघर्ष है । आदर्श कहता है - जाओ और कोमल कामना कहती है - आओ । उर्मिला को आठ पहर चौंसठ घड़ी अपने पति का ही ध्यान रहता है । वह उनके ध्यान में इतनी लीन रहती है कि अपने आप को भी भूल जाती है । उसकी अवस्था आत्मज्ञान की भूमि को भी अतिक्रान्त कर जाता है । समस्त सुख के भोग उसके सामने तुच्छ दिखाई देते हैं । उसने अपने हृदय - मंदिर में पति की मूर्ति स्थापित की और प्रतिमा की उपासना के लिए स्वयं ही आरती बनकर विरह की आग में जलने लगी । इस प्रकार उसका जीवन सतत प्रज्वलित दीपशिखा बनकर रह गया । उसका हृदय वेदना के कारण अतिशय कोमल बन गया । उसमें दृष्टि की व्यापकता आ गई । समान परिस्थिति से युक्त सभी अबलाओं के प्रति उसके हृदय में समानुभूति और सहानुभूति उत्पन्न हो गई है। वह मालिनों से कहती है कि लताओं और पौधों को स्वच्छन्द भाव से फलने फूलने और विकसित होने दें । कैंची द्वारा उनको काट-छांट न करें : ----

सींचें ही बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्तरी,
शाखी फूल फलें यथेच्छ बढ़ के, फैलें लताएँ हरी । १

वियोग ने उर्मिला के हृदय को ऐसा उदार और कोमल बना दिया कि वह दूसरों की पीड़ा की कल्पना से ही कष्ट का अनुभव करती है । घायल व्यक्ति ही घायल की गति को समझ सकता है । उर्मिला राज्य भर में अपने ही समान व्यथित लोगों की खोज करवाना चाहती है, जिससे वह उनकी पीड़ा और अभाव को दूर करने का प्रयास कर सके : ----

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ २७०

प्रोषित पतिकाएँ हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदुःखिनी मिलें तो
दुःख बँटे जा, प्रणयपुरस्सर ले आ। १

सुख दे सकते हैं तो दुःखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेंटूँ,
कोई नहीं यहाँ क्या जिसका कोई अभाव मैं भी मेटूँ। २

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विरह की अवस्था में ललित कला की सहायता से वेदना के भार का मार्गान्तरीकरण हो जाता है। भारतीय साहित्य में, इसलिए विरहिणियों का वर्णन जहाँ- जहाँ किया गया है वहाँ उन्हें वीणा-वादन चित्रांकण अथवा काव्यग्रन्थावलोकन में लीन दिखाया गया है। गुप्त जी की उर्मिला भी विरह की अवस्था में इन्हीं का सहारा लेती है :--

तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ पाँचवीं तू प्रवीणा। ३

वह नगर की बालिकाओं के लिए ललित कलाओं का शिक्षण - केन्द्र खुलवा देना चाहती है, जिससे उसका समय विधा दान में बीत सके। उसने विरहावस्था में अनेक चित्र बनाए। सारे चित्रों में उसने अपने प्रियतम की ही भाँति सीता और राम को ही प्रमुख स्थान दिया है। उसने सर्वत्र सभी चित्रों में लक्ष्मण को अग्रज और भाभी की सेवा में निरत चित्रित किया है। उसे चित्रकूट के वे क्षण याद आते हैं जब उसके

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २७५
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २७६
३ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २७०

माता-पिता राम को मनाने के लिए भरत के प्रयास में सहायता देने के लिए आए थे उसे स्मरण आ रहा है कि उसकी माँ ने उसकी दयनीय अवस्था पर तरस खाकर कहा था कि तुम्हारी स्थिति बड़ी ही विलक्षण है, बड़ी ही दुखद है जिसे न तो वन मिला और न तो घर ही :-----

"हाल रही सखी, माँ की
झाँकी वह चित्रकूट की मुझको
बोली जब वे मुझसे
मिला न वन ही न भवन ही तुझको"। १

विरह की दीर्घ अवधि में प्रेमी- प्रेमिका का आकस्मिक मिलन भी होता है तो भावावेग के कारण शब्दों के आदान प्रदान का अवसर चूक जाता है। गुप्त जी ने चित्रकूट में उर्मिला और लक्ष्मण को एकांत कुटिया में क्षण भर के लिए मिलाया भी है तो इसी प्रकार उनकी आन्तरिक व्याकुलता और उद्वेग को बढ़ा कर छोड़ दिया है।

गुप्त जी ने दीपक और पतंग की अपूर्व प्रेम कहानी के द्वारा उर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम के स्वरूप की व्यंजना की है। पति मानो दीपक के समान तिल-तिल जल कर अपने प्रेम का उज्ज्वल परिचय दे रहा है। उस जलने में उसको जीवन की चमक है। संसार उसके त्याग की प्रशंसा करता है। उधर पत्नी भी शलभ के समान पति की प्रेम -शिखा पर अपने प्राणों को होम कर रही है, परन्तु उसके भाग्य में तो निराशा और दुर्भाग्य का ही अंधकार है, फिर भी प्रेम तो दोनों ओर समान रूप से ही विकसित होता है : ----

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २७३

"दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली।
किन्तु पतंग- भाग्य- लिपि काली,
किसका वश चलता है
दोनों ओर प्रेम पलता है।" १

गुप्त जी ने पवित्र दाम्पत्य - प्रेम को झाँकी दिखाने के लिए विरह में नारी की अवस्था की तुलना दीपक की वर्तिका के साथ की है। दुःख के अन्धकार में उर्मिला अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करती हुए प्रियतम के करुणामय चरणों में मिल जाना चाहती है। प्रियतम का सहारा लेकर वह अपने जीवन को चंचल बनाना [illegible] नहीं चाहती और अपने प्रकाश को बुझाना भी नहीं चाहती। अतएव वह अपने प्राणों की प्रतीक वर्तिका को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे वर्तिके, भय से कम्पित मत बन। मैं तुझे बुझने न दूँगी। तू मेरे वस्त्र की ओट में अपनी यात्रा जारी रख। जिस प्रकार एक-एक ईंट लेकर लोग योजनों तक फैले हुए दुर्गों का निर्माण कर लेते हैं उसी प्रकार तेरे संचित लघु प्रकाश के सतत प्रवाह के द्वारा प्रकाश के विशाल राशिपुंज का निर्माण होगा :-----

"होने दे निज शिखा न चंचल, ले अंचल की ओट,
ईंट ईंट लेकर चुनते हैं हम कोसों का कोट।
ठंडी न पड़, बनी रह तत्ती
स्नेह जलाता है यह बत्ती।" २

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २८२
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २८५

षट्ऋतु के प्रसंग में दम्पति के विरह वर्णन की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है गुप्त जी ने भी साकेत में षट्ऋतु के प्रसंग में उर्मिला के विरह का वर्णन किया । कहीं-कहीं इसमें विभावना अलंकार एवं प्रतीक के सहारे विरह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण अंकित किया है । उर्मिला कल्पना जगत में अंकित प्रियतम से कहती है कि हे वनचारी तपस्वी तुम्हारी घोर तपस्या के फलस्वरूप ही यह ग्रीष्म का उत्ताप इतना प्रखर हो गया है । उर्मिला का विश्वास है कि ग्रीष्म का भयंकर प्रकोप लक्ष्मण द्वारा वन में की जाने वाली तपस्या के कारण ही है इसीलिए उर्मिला लक्ष्मण को सम्बोधित करती हुई कहती है कि -- हे प्रियतम, इतनी कठोर तपस्या द्वारा मन पर इस प्रकार विजय प्राप्त मत करो । यहाँ अयोध्या में जो मानिनी उर्मिला बैठी है तनिक उसकी भी सुधि लो । अपने मन को वश में कर उसकी ओर से सर्वथा उदासीन मत बन जाओ :------

"मन को यों मत जीतो,
बैठी है यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी भी तो ।
इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग - सी जिसके मारे ।
देखो, ग्रीष्म भीष्म तनु धारे,
जन को भी मनचीतो
मन को यों मत जीतो ।१

बरसात के बादलों का नारी के विरह-वर्णन के साथ पारस्परिक सम्बन्ध है । गुप्त जी की उर्मिला बादलों को सम्बोधित करती हुई कहती है कि 'हे बादल,' तुम दर्शन दो और जन-जन के जीवन का स्पर्श करते हुए उन्हें सरस बनाओ। तुम बरस कर ग्रीष्म के प्रचण्ड उत्ताप से परितप्त शीर्ण जगत में नव यौवन की सरसता का संचार करो । सृष्टि के नेत्रों के लिए हे सुखकारी अंजन, जगती के ताप को विनष्ट

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २८६

करने वाले हे सदय हृदय देव, बरसो । संसार को जागृति का संदेश सुनाने वाले हे बादल, सम्पूर्ण सृष्टि के जड़-चेतन में नई चेतना और नई शक्ति भर दो :----

बरसो बरसो घन, बरसो,
बरसो जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन, बरसो ।
घुमड़ उठो आषाढ़ उमड़ कर पावन सावन, बरसो ।
भाद्र-भव आश्विन के चित्रित चौरस, स्वातिघन बरसो ।
सृष्टि दृष्टि के अंजन रंजन, ताप विभंजन, बरसो ।
व्यग्र, उदग्र, जगज्जननी के, अयि अमृत स्तन, बरसो ।
गत सुकाल के प्रत्यावर्तन हे शिंजितर्तन, बरसो ।
जड़-चेतन में बिजली भर दो ओ उद्बोधन बरसो ।
चिन्मय बने हमारे मृण्मय पुलकांकुर कन, बरसो ।
मन्त्र पढ़ो, छींटे दो, जागे सोये जीवन : बरसो ।
घट पूरो त्रिभुवनभावन रस, कन कन छन छन, बरसो ।
आज मांगते हो, घर पहुँचे, जनजन के जन, बरसो । १

पावस धड़कती बिजली और गरजते बादलों को देखकर उर्मिला के मन में एक दूसरा चित्र अंकित हो उठता है । वह कहती है कि यह कदाचित बादल नहीं कड़क रहे हैं, वरन् किसी का हृदय धड़क रहा है । यह जो तड़क तड़क कर गर्जना करने वाले बादल हैं, किसी की भावनाएं हैं । वायु से जो लता के पत्ते कांप रहे हैं वे मानो लता के लाल होंठ हैं, जो कुछ कहने के लिए हिल रहे हैं ।२

संयोग के दिनों में लक्ष्मण अपनी प्रिया को आंखों में बसे रखते थे । वे एक दूसरे को दीर्घ काल तक देखते रहने पर भी अघाते न थे । अब उनकी दशा ऐसी हो

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि०; पृष्ठ - २६३
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० पृष्ठ - २६६

गयी है कि वियोग में लक्ष्मण स्मृति-रूप उर्मिला के मन में छाए हुए हैं । मानों वे उर्मिला के नेत्रों से कूदकर उसके मनरूपी सरोवर में मग्न हो गए हैं तभी तो प्रेयसी के आंसू के छींटे जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ते हैं । इसके द्वारा कवि ने यह दिखाना चाहा है कि जिस प्रकार छींटे उड़ने पर सरोवर में उद्वेलन हो उठता है उसी प्रकार यह आँसू के कण भी प्रेयसी की मानसिक उद्विग्नता के परिचायक हैं । यहां उत्कृष्ट अलंकार योजना द्वारा पति-पत्नी के वियोग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण अंकित किया है :------

"पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,
छींटे वही उड़े थे, बड़े बड़े अश्रु वे कब थे ।[1]

संयोग काल में उर्मिला के लिए सुरभि वांछनीय थी । वियोगावस्था में उसे अब सुरभि की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । स्वयं में फूलों में पली और फूलों की शय्या पर सोनेवाली उर्मिला आज कांटों की सेज पर सोयी हुई है । वह नहीं चाहती कि फूलों में पली सुरभि इन कांटों की सेज पर आवे । इसी निमित्त वह उसे अपने से दूर रखना चाहती है : -------

"अरी, सुरभि, जा, लौट जा, अपने अंग सहेज,
तू है फूलों में पली, यह कांटों की सेज ।" [2]

वह सौन्दर्य सुकुमारता और सद्भाव के प्रतीक ० फूलों के प्रति अतिशय सदय प्रतीत होती है । वह नहीं चाहती कि कोई उन्हें तोड़े । वह सखी से वर्जन करती है और कहती है कि वह उन फूलों को छोड़ दे । वे फूल इतने सुकुमार हैं

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २६६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - २८३

कि पति वियोगिनी उर्मिला के विरह-दग्ध व हाथों से संस्पृष्ट होकर ही कुम्हला गये हैं। वह नहीं चाहती कि सौन्दर्य प्रेमियों के क्षणिक विनोद के कारण फूलों का व्यर्थ ही नाश हो जाए। उन फूलों पर प्रसरित ओस के बूंदों के विषय में उसकी धारणा ऐसी है कि ये बूंदें उनके आंसू हैं। इन्हीं भावनाओं में डूबते - उतराते समय उसकी अस्मिता के साथ ही स्वकीय स्वार्थवृत्ति का लोप हो जाता है। वह उदात्त भूमि पर विचरण करने लगती है। वैयक्तिक सीमा के सम्मुख उसका उदात्तीकृत भाव विराट रूप धारण कर लेता है। उसमें कर्तव्य बोध जागृत हो जाता है। हृदय की कोमलता और कर्तव्य की कठोरता के संघर्षों में उलझ जाने पर उसके मन का उदात्त रूप ही प्रबल हो उठता है। वह सखियों से कहती है कि वह निःसंकोच उन फूलों को चुन लें। जो फूल अपने रूप, गुण और गन्ध के कारण उसे आकृष्ट कर रहे हों उन्हें तोड़कर उचित स्थान पर अर्पित कर देने में ही उनकी सार्थकता है। दुखदर्शिनी, सुकुमारी लताओं ने उन पुष्प रूपी पुत्रों को धूल में मिलने के लिए नहीं उत्पन्न किया, अपितु गौरव के साथ किसी पर चढ़ कर शोभित होने के लिए ही उन्हें जन्म दिया है। इसी में उनकी सार्थकता है। विरह का ऐसा उदात्तीकरण कम ही स्थानों में देखने को मिलता है। इन पंक्तियों में कवि ने बड़ी ही चतुरता से अनेक श्लिष्ट अर्थों को उपस्थित किया है :---------

"छोड़, छोड़, फूल मत तोड़, आली देख मेरा
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है
दु:खिनी लता के लाल आंसुओं से छाये हैं।
किन्तु कुछ नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब
रूप, गुण, गन्ध से जो तेरे मन भाये हैं,
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए,
गौरव के संग चढ़ने के लिए आये हैं।"[१]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३१८

विरहावस्था में पति और पत्नी को कोयल की काकली बड़ी ही पीड़ादायक प्रतीत होती है। ऐसी ही अवस्था में एक समय पति-वियोग से व्याकुल उर्मिला कोयल को सम्बोधित करती हुई कहती है -- हे कोयल यह तो बतला कि यह तेरी कूक कैसी है जिसे सुनकर हृदय में हूक सी उठती है लगता है कि तेरा यह कूक किसी आर्त; वेदना से भरी हुई और गम्भीर है जो आकाश के हृदय को चीर कर निकली है। तेरा स्वर ज्वाला के समान है जिसके लगते ही हृदय दग्ध हो उठता है और नेत्र आँसुओं से भर उठते हैं : ------

"क्या ही सकरूण, दारूण, गभीर,
निकली है नभ का हिय चीर,
होते हैं दो दो दृग सनीर,
लगती है लय की एक लूक
ओ कोयल, कह, यह कौन कूक।"[1]

उर्मिला कोयल को सांत्वना देती हुई कहती है कि धैर्य धारण करने में ही कल्याण है। जिस प्रकार उसके पति अवधि समाप्त होने पर लौट कर आवेंगे उसी प्रकार कोयल के बसन्त का भी प्रत्यावर्तन होगा। किसी भी व्यक्ति के दुःख का समय सदैव नहीं बना रहता। उसका अवसान अवश्यम्भावी है। दुर्दिन में धैर्य धारण करना सज्जनों और बुद्धिमानों का पावन कर्तव्य है।

पति-पत्नी की विरहावस्था के विषय में चित्रण करते समय गुप्त जी ने उर्मिला की उपमा संसार- सागर की उस विचित्र नवीन तरंग से दी है जो इस किनारे से उठ कर उस पार पहुँचने में अपने को असफल पाती है। उर्मिला सोच रही है -- जल की विशेष क्रिया के समान जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण मैं बीच में

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत -:- सं० २०२५ वि० - पृष्ठ - ३१६

ही अटक कर रह गई और अब मंझधार में ही भटकती फिर रही हूं। जिस प्रकार वायु की प्रतिकूलता के कारण लहर इच्छा होते हुए भी कूल, कुंज और कछारों तक नहीं पहुंच पाती उसी प्रकार कूल, लता और कछारों में आकर्षण होने पर भी समय की प्रतिकूलता के कारण मेरे जीवन की तरंगें वहाँ तक नहीं पहुंच पातीं। धारा और भंवर के समानधर्मक बाधाएं हैं। मैं तो इस संसार सागर की एक विचित्र लहर हूं :——

"उठ अपार न पार जाकर भी गई,
उर्मि हूं मैं इस भवार्णव की नई।¹
अटक जीवन के विशेष विचार में,
भटकती फिरती स्वयं मझधार में,
सहज कर्षण कूल, कुंज, कछार में,
विषमता है किन्तु वायु-विकार में,
और धारा और चक्कर हैं कई,
उर्मि हूं मैं इस भवार्णव की नई।"

मानव जीवन में पति-पत्नी के बीच प्रेम की उदात्तता और महत्ता किस स्तर तक जा सकती है इसका उत्कृष्ट निदर्शन गुप्त जी ने उर्मिला के चित्रण के माध्यम से किया है। नर और नारी के सम्बन्धों के विवेचन करने वाले विद्वानों ने काम, वासना और संयम के महत्त्व के प्रसंग में विचार करते हुए जिसे मानवता की विकास की प्रक्रिया में बड़ा उल्लेख - योग्य विषय माना है कि भारत में यौन-जीवन (sexual life) को इतना पवित्र और दिव्य माना गया है कि जितना इस संसार में अन्य किसी मानव में सोचा तक नहीं गया। हिन्दू शास्त्रकारों ने उचित

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ : पृष्ठ - ३२५

को स्वाभाविक जीवन-धारा में डालकर स्वस्थ और सबल परम्परा का निर्माण किया भारतीय नारी के विवाहित जीवन में सदाचार की हीनता का प्रमाण किसी भी उत्कृष्ट कवि की वाणी में कभी रूपायित नहीं हो सका । "जब काम की स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति मस्तिष्क और हृदय द्वारा बुद्धि और कल्पना द्वारा नियंत्रित रहती है, तब प्रेम होता है । प्रेम न तो कोई रहस्यपूर्ण उपासना है और न पशु-तुल्य उपभोग । यह उच्चतम भावों की प्रेरणा के अधीन एक मानव-प्राणी का दूसरे मानव-प्राणी के प्रति आकर्षण है । विवाह एक संस्था के रूप में प्रेम की अभिव्यक्ति और विकास का एक साधन है । विवाह केवल एक रूढ़ि नहीं है, अपितु मानव-समाज की एक अन्तर्भूत दशा है । यद्यपि इसके आदर्श बदलते रहे हैं, फिर भी यह मानव-साहचर्य का एक स्थायी रूप प्रतीत होता है । यह प्रकृति के प्राणिशास्त्रीय लक्ष्यों और मनुष्य के समाजशास्त्रीय लक्ष्यों के मध्य समंजन (तालमेल बिठाना) है । यह समंजन सफल होता है या नहीं, इस बात पर निर्भर है कि इसे किस प्रकार क्रियान्वित किया जाता है । यह हमें इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग तक पहुँचा सकता है और कुछ दशाओं में यह हमारे लिए नरक भी बन जाता है"।[1]

गुप्त जी पति-पत्नी के बीच प्रगाढ़ और स्थायी मित्रता को आवश्यक मानते हैं । उनकी दृष्टि में "मित्रता यौन आकर्षण से भिन्न वस्तु है । पुरुषों के लिए स्त्रियों के और स्त्रियों के लिए पुरुषों के बुद्धिमत्तापूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण मेल-जोल का निषेध नहीं किया जा सकता । क्योंकि इस प्रकार का मेल-जोल पूर्णतया अपापविद्ध नहीं हो सकता, इसलिए पत्नियों से ही यह आशा की जाती है कि वे मित्र भी हों । कहा गया है कि पत्नी का मन पति के साथ एक होना चाहिए, वह उसकी छाया के समान होनी चाहिए और सब अच्छे कामों में उसकी सहचारिणी होनी चाहिए, उसे सदा प्रसन्न रहना चाहिए और घर के काम काज का ध्यान रखना चाहिए ।"[2] ऋग्वेद की विवाहिता नारी अपने पति की साथिन (सखी) है और उसकी रुचियाँ पति की रुचियों के समान हैं । जिसमें मनोवैज्ञानिक पूरकता अथवा

---

१ -डा० राधाकृष्णन् - धर्म और समाज : सन् १९६७ ई० : पृष्ठ - १७९
२- वही —— १०६

स्वभावों का समानता कहा जाता है, उसके फलस्वरूप विचारों और अनुभूतियों की समानता उत्पन्न होती है और बढ़ती है। बौद्धिक और सुरुचिपूर्ण साहचर्य की अनुभूति, जीवन-मूल्यों के मान में समानता सफल विवाह के लिए एक आशाप्रद प्रस्थान-भूमि प्रस्तुत करता है। विचारों और महत्वाकांक्षाओं की एकता से भी बढ़कर कष्टों में हिस्सा बांटना मानवीय सहानुभूति की आधारशिला का काम करता है।[1] "दोनों एक दूसरे के पूरक होने चाहिए, जिससे एक - दूसरे की आत्मानुसन्धान में सहायता दे सकें और दोनों वास्तविक व्यक्ति के रूप में विकसित हो सकें और दोनों में एक समस्वरता स्थापित हो जाए। विवाह सम्बन्ध का उद्देश्य यह है कि उससे जीवन और मन दोनों को बल मिले। जहाँ नारी अपेक्षाकृत अ गतिविधियों में अधिक उलझी रहती है, जो प्रकृति ने उसे सौंपी है, वहाँ मनुष्य मानसिक सृजन में अधिक व्यस्त रहता है। कठोर श्रम करना, सेवा करना और परिवार का पालन-पोषण करना राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा है।[2] गुप्त जी शुद्ध हिन्दुत्व के उपासक थे, जिसके अनुसार विवाह को एक संविदा न मानकर संस्कार माना गया है। संस्कार से मनुष्य का परिष्कार होता है तथा पूर्णता प्राप्त होती है। हिन्दू आदर्श इस बात को स्वीकार नहीं करता कि विवाह का उद्देश्य काम- सुख की प्राप्ति है। सम्भोग केवल पुत्र - प्राप्ति का साधन है न कि उद्दामवासना के सुख के प्राप्ति का साध्य। हिन्दुओं का मत है कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। भविष्य पुराण में कहा है कि जिस प्रकार एक पहिये का रथ और एक पंख का पक्षी किसी कार्य के योग्य नहीं होता है, उसी प्रकार बिना जीवन- संगिनी के पुरुष किसी कार्य योग्य नहीं होता है, विवाह के द्वारा स्त्री- पुरुष का समन्वय होता है। समस्त धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि विवाह के उपरान्त पति- पत्नी एक हो जाते हैं। पी० के० आचार्य ने लिखा है कि वैवाहिक संस्कार स्त्री- पुरुष को ऐसे समन्वित रूप में उपस्थित करता है, जिसका आधा अंग पुरुष होता है और आधा

---

१ - राधाकृष्णन् - धर्म और समाज : सन् १९५७ ई० : पृष्ठ - १७९
२ - राधाकृष्णन् - धर्म और समाज : सन् १९५७ ई० : पृष्ठ - १७९

स्त्री का । इसी मनोरम आदर्श का प्रतिपादन शंकर- पार्वती के दिव्य अर्द्धनारीश्वर रूप से होता है ।"[१] गुप्त जी ने भारतीय परम्परा के अनुसार पति और पत्नी को समान और एक दूसरे के लिए पूरक माना है । उन्होंने उनके मध्य स्वाभाविक समानता और मनोवैज्ञानिक [illegible] परितृप्ति के बन्धन को महत्वपूर्ण बताया है । फलस्वरूप उनके मध्य विचारों और अनुभूतियों की समानता उत्पन्न होती है और बढ़ती है । जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों के अनुसार आदर्श वैवाहिक प्रतिमानों पर निर्मित जीवन पति-पत्नी के लिए एक आशाप्रद पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है । विचारों और महत्वाकांक्षाओं की एकता से भी बढ़कर कष्टों में हिस्सा बंटाना पारस्परिक सहानुभूति की आधारशिला का काम करता है । गुप्त जी ने दिखाया है कि सच्चा प्रेम आत्मा और शरीर का मिलन है । वह इतना घनिष्ठ होता है कि और इतनी दृढ़ता से स्थापित होता है कि प्रतिकूल से प्रतिकूल झंझावातों के आघात से डगमगाता नहीं । उर्मिला और लक्ष्मण के चित्रण के द्वारा गुप्त जी ने दिखाया है कि पति- पत्नी का सम्बन्ध इतनी गहराई से बांधने वाला, अपनी सुकुमारता से हृदय को जकड़ देने वाला और आवेश की तीव्रता से जीवन का रूपान्तर कर देने वाला सम्बन्ध है कि इसके परिप्रेक्ष्य में किसी अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने की कल्पना भी अपवित्र एवं घृणास्पद प्रतीत होती है । इस आशय की मार्मिक अभिव्यक्ति दृष्टव्य है : ---

मुझे फूल मत मारो,
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो ।
होकर मधु के मीत मदन, पटु, तुम कटु गरल न गारो,
मुझे विकलता तुम्हें विफलता, ठहरो, श्रम परिहारो ।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर- बिन्दु यह- यह हरनेत्र निहारो ।
रूप- दर्प कन्दर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो, यह मेरी चरण- धूलि उस रति के सिर पर धारो ।[२]

---

१ - शम्भूरत्न त्रिपाठी - भारतीय समाज और संस्कृति : सन् १९७० ई० : पृ० - २७२
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृ० ३१४

उपर्युक्त उद्धरण में हर- नेत्र को निहारने की जो चुनौती दी गई है वह दर्शनीय है। उर्मिला चेतावनी दे रही है कि शुचि का प्रतीक उसे सताने का संकल्प छोड़ दे, अन्यथा ज्वलन्त अग्नि-शिखा में हाथ डालने का अथवा विषधर के फन पर ठोकर मारने का जो परिणाम होता है वही होगा। गुप्त जी ने भारतीय पत्नी के प्रतीक के रूप में चित्रित उर्मिला के द्वारा यह बताना चाहा है कि परकीयत्व को अपनाने के लिए अनुलोमिन की विकृत परम्परा के अनुमोदन करने वालों का समर्थन नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार पत्नियाँ पति के सारे कार्यों में समभाग लेने वाली [illegible] अर्द्धांगिनियाँ हैं। आर्य पत्नियों के विषय में कवि लिखता है :--

"निज स्वामियों के कार्य्य में समभाग जो लेतीं न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे,
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धांगिनी सुकुमारियाँ,
तात्पर्य यह -- अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियाँ।" १

शृंगार सजाऊँ, किन्तु उर्मिला के पास इतना अवसर कहाँ? वह प्रिय - मिलन के लिए व्याकुल होकर कह उठती है : --

हाय सखी शृंगार मुझे अब भी सोहेंगे,
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे?
+ + + +
नहीं नहीं प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं नाथ मुझे वैसी ही पावें। २

---

१ -- मैथिलीशरण गुप्त - भारत - भारती, १९८३ पृष्ठ - १७
२ -- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - सं. २०३१ वि० पृष्ठ - ३९४

इन पंक्तियों पत्नी के हृदय का सच्चा चित्र चित्रित है। उर्मिला लक्ष्मण को उपहार-स्वरूप पुष्प देना चाहती है अत: वह सखी से कहती है :-

" जा नीचे दो चार फूल चुने ले आ डाली
x x x
वनवासी के लिए सुमन का भेंट भली यह।"[1]

अकस्मात् लक्ष्मण के शब्द सुनाई पड़ते हैं :-

" किन्तु उसे तो कभी पा चुका प्रिये आली यहाँ "[2]

उर्मिला चौंक पड़ती है और :-

" देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने सखी विधर थी
पेड़ों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी। "[3]

सखी विधर थी कहकर कवि ने गार्हस्थ्य जीवन की ओर संकेत किया है। भारतीय समाज में सखी पति-पत्नी के मिलन का उपाय करके स्वयं वहाँ से हट जाती है। लक्ष्मण एवं उर्मिला के मिलन का वर्णन करते हुए कवि का कहना है :-

" लेकर मानो विश्व-विरह उस अन्त:पुर में
समा रहे थे एक दूसरे के उर में। "[4]

1- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत ; सं0 2031 वि ; पृष्ठ - 395
2- वही, पृष्ठ - 395
3- वही, पृष्ठ - 395
4- वही, पृष्ठ - 395

इस प्रकार चौदह वर्षों का विरह- पारावार एक क्षण में संयोग- सुख की लहरों में विलोड़ित हो उठा ।

विदेह कुमारी माण्डवी ममवती सीता की बहन है । वह रघुकुल की मर्यादा और गौरव के प्रतीक भरत की अर्द्धांगिनी, वह भोग और त्याग दोनों को धर्म के साधन के रूप में स्वीकार करती है । जीवन के वैषयिक भोगों को पाने के लिए पामर जन लालायित रहते हैं एवं नाना प्रकार के पापाचार करते हैं । उन भोगों को धर्मानुष्ठान तथा कर्तव्यनिष्ठा के सम्मुख वह अत्यन्त तुच्छ समझती है । वह पति के सुख- दुःख और भावनाओं के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेती है । वह पति के परिताप को, उसके कष्ट को और उसकी विपत्ति को जितनी व अच्छी तरह समझती है एवं उसे दूर करने का प्रयत्न करती है उतना अन्य कोई नहीं कर सकता । ननिहाल से लौटने पर पिता की मृत्यु एवं भाई के वनवास का समाचार पाते ही भरत पर मानो शोक का पहाड़ टूट पड़ता है । वे न तो संसार का पूर्ण त्याग ही कर सकते हैं और न भोग ही कर सकते हैं । भरत के मन में अहोम ग्लानि है । वे अयोध्या में संघटित सारे अनर्थों के मूल में अपने ही अस्तित्व को ही देखते हैं । वे सोचते हैं कि एक मैं न होता तो संसार में कौन सी कमी आ जाती ? वे कहते हैं : ------

हाय ! एक मेरे पाछे ही
हुआ यहाँ इतना उत्पात ।
एक मैं न होता तो सब की
क्या अवश्यता घट जाती ?
छाती नहीं फटी यदि मेरी,
तो धरती ही फट जाती ।[१]

उधर माण्डवी का हृदय भी ग्लानि और क्षोभ से भरा हुआ है । सारी घटनाओं की मूक और असहाय साक्षिणी के रूप में उसने जो ग्लानि की पीड़ा झेली है वह

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३९६

श्रवणीय है। भरत की भावना में वह अपने ही हृदय की भावना के प्रतिबिम्ब देखती है। उसके उद्गार का श्रवण करते ही वह बोल उठती है :------

हाय। नाथ धरती ही फट जाती,
    हम तुम कहीं समा जाते,
तो हम दोनों किसी मूल में
    रहकर कितना सुख पाते।
न तो देखता कोई हमको,
    न वह कभी ईर्ष्या करता,
न हम देखते आते किसी को,
    न यह शोक आँसू भरता। [१]

प्रत्येक विषयगत वैक एषणाओं में एक लोकैषणा है। अभ्युदय और विकास के सारे प्रयासों के मूल में यह लोकैषणा ही है। इसी के लिए हम राज- पाट तथा बहुविध विभूतियों का संकलन एवं रक्षण करते हैं। माण्डवी में ग्लानि की मात्रा का स्तर अतिरेक हो उठा है कि वह लोकैषणा के अनुपम सुख का त्याग कर अज्ञात देश- काल एवं स्थान में केवल पति- साहचर्य पूर्वक जीवन को किसी प्रकार बिता देना चाहती है : -------

स्वयं परस्पर भी न देखकर
    करते हम वह अंगस्पर्श,
तो भी निज दाम्पत्य भाव का
    उसे मानती मैं आदर्श। [२]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३६६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३६६

माण्डवी के सम्बन्ध में नगेन्द्र जी लिखते हैं कि "उसमें अपने पति की गौरव भावना है : उनके दुःख से वह दुःखी है । उनकी स्थिति पर उसे असन्तोष है, लोगों की ईर्ष्या उसे सह्य नहीं है । उसमें स्त्रियोचित लालसाएँ हैं, प्रेम की आग है --- परन्तु उसकी भावनाएँ बन्दिनी हैं"।[1] प्रियतम के सहवास में सती को सुख ही सुख है। माण्डवी प्रियतम से कहती है :------

मेरे नाथ जहाँ तुम दासी वहीं सुखी होती ।[2]

आज के युग में स्त्रियाँ पति की असुविधा और विवशता का ध्यान न रखकर केवल अपने सुख दुःख के दृष्टिकोण से दाम्पत्य जीवन का मूल्यांकन करती हैं । पाश्चात्य जीवन के अन्धानुकरण के फलस्वरूप ऐसी ही स्त्रियाँ वैवाहिक जीवन के विच्छेद तक के लिए कटिबद्ध हो उठती हैं । इस सन्दर्भ में भारतीय परम्परा की गरिमा कितनी उदात्त प्रतीत होती है । माण्डवी भरत के मनोभावों को समझती है, परखती है और उसका यथार्थ मूल्यांकन भी करती है । वह जानती है कि उसके पति अद्वितीय आदर्श के संकल्प को रूपायित करने के लिए व्रती हो चुके हैं वह विश्व के इतिहास में एक नये प्रतिमान की स्थापना करने में समर्थ हैं । भरत जगत को उदात्त चरित्र का ऐसा अवदान देने जा रहे हैं जिसके सम्मुख कोई भी मूल्यवान वस्तु टिक नहीं सकती । माण्डवी को विश्वास है कि मनुष्यत्व के वास्तविक मूल्यों के पारखी भरत को श्रेष्ठ- श्रेष्ठ नर- रत्न के रूप में स्मरण कर सदैव नवनिर्मित करते रहेंगे । धरती पर अन्धकार और प्रकाश का युद्ध सदा चलता रहता है । निराशाओं के बीच भी आशा टूटती नहीं । लोग वरणीय को प्राप्त करने की चेष्टा में लगे ही रहते हैं । अनास्थाओं और संत्रासों के बीच नव विहान के ज्योतिर्मय समाज की अवतारणा के

---

1 - डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन : संस्करण - १९४० ई० , पृष्ठ - ४१

2 - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - सं० २०२५ : पृष्ठ - ३९८

लिए आदर्श के अन्वेषण के प्रयास जारी ही रहते हैं। इसी प्रकार के असंख्य प्रयत्नों के उपरान्त संसार ने भरत को प्राप्त किया है। भरत चाहे संसार को कैसा समझें परन्तु जगत के हृदय में उनके प्रति असंख्य ममता और मोह है। विश्व की भ्रातृ-भावना के आदर्श की महिमा यदि माण्डवी के हृदय में मण्डित नहीं होती तो भरत को प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती ? माण्डवी की यह उक्ति कितनी उदात्त है :--

किन्तु विश्व की भ्रातृ-भावना
यहाँ निराश्रित ही रोती।
रखवाला नरलोक प्रभु ही
दैवी उन्नत भावों से,
घर-घर स्वर्ग उतर सकता है
प्रिय जिनके प्रस्तावों से।
जीवन में सुख-दुःख निरन्तर
आते जाते रहते हैं,
सुख तो सभी भोग लेते हैं,
दुःख धीर ही सहते हैं।
मनुज दुग्ध से, दनुज रुधिर से,
अमर सुधा से जाते हैं,
किन्तु हलाहल भव-सागर का
शिव-शंकर ही पीते हैं।
धन्य हुए हम सब स्वधर्म की
जिस ध्रुव नई प्रतिष्ठा से,
समुत्तीर्ण होंगे कितने कुल
इसी अतुल की निष्ठा से।[1]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त [illegible] - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३६८

माण्डवी सम्पूर्ण राज्य के प्रजा जन को अपने परिवार के सदस्यों की भाँति मानती है । वह उनके सुख- दुःख का समाचार अपने देवर से पूछती रहती है । उसे विश्वास है कि प्रजा और सेवकों को उनके (भरत- माण्डवी के) सुख से सन्तोष प्राप्त होगा, क्योंकि उनके दुःखी के लिए दुःखी है :--------

उन्हें हमारे सुख से बढ़कर
नाथ, नहीं कोई सन्तोष,
सदा हमारे दुःखों पर वो
देते हैं स्वदेव को दोष ।[१]

भरत जब अत्यन्त निराश हो जाते हैं तब पत्नी माण्डवी उन्हें नाना प्रकार से सान्त्वना देती है :---------

"नाथ न तुम होते तो यह सुत कौन निभाता तुम्हीं कहो
उसे राज्य से भी महाई धन देता आकर कौन कहो
मनुष्यत्व का सत्य- तत्व यूँ किसने समझा बूझा है
सुख को लात मारकर जुझा कौन दुःख से जूझा है"[२]

और: -----

जीवन में सुख- दुःख निरन्तर आते जाते हैं
सुख तो सभी भोग लेते हैं दुःख धीर हो सहते हैं ।[३]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४००
२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३९७
३ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३९८

एक स्थान पर भरत सबके दु:ख का एक मात्र कारण स्वयं को मानते हुए कहते हैं : ----

"मैं सभी सह सकता हूँ, पर असह्य तुम सबका ताप"।[१]

तो माण्डवी उत्तर देती है : --------

"भूरि- भाग्य ने एक भूल को
सबने उसे सम्भाला है।
दुर्दैव ही यहाँ दु:ख लाया है"।[२]

संयुक्त परिवार के दायित्व को कितनी अच्छी तरह समझाया है गया है। संयुक्त परिवार में किसी कष्ट के लिए कोई एक उत्तरदायी नहीं होता। उसके सभी साझीदार होते हैं। रामवनवास के समय राजपरिवार के सभी जन दु:खी एवं सभी कष्ट के साझीदार हैं।

माण्डवी को कला के प्रति अनुराग है और वह उसका संवर्द्धन भी चाहती है -

"कहा माण्डवी ने उलूक भी
लगता है चित्रस्थ भला,
सुन्दर को सजीव करती है,
भीषण को निर्जीव कला"।[३]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३६६

२ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ३६६

३ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४०४

अयोध्या की समस्त समृद्धि का श्रेय जब शत्रुघ्न भरत को ही देते हैं तब भरत प्रेम पूर्वक प्रत्याख्यान करते हुए कहते हैं कि शत्रुघ्न ने सारा कार्य करके मुझे सेंत-मेंत ही यशस्वी बना दिया है। माण्डवी को रघुकुल की यही रीति सबसे अच्छी लगती है कि इनके परिवार के सभी सदस्य अपना यश तो दूसरों को प्रदान करते हैं और दोष अपने सिर पर ले लेते हैं :--------

"सेंत- मेंत के यश का भागी
प्रिये, तुम्हारा है भर्ता,
करके स्वयं तुम्हारे देवर,
कहते हैं मुझको कर्ता ।
नाथ, देखती हूँ सब घर में
मैं तो इसमें ही सन्तोष,
गुण अर्पण करके औरों को,
लेना अपने सिर सब दोष"।१

शूर्पणखा के प्रसंग को लेकर शत्रुघ्न से होने वाली बातों के प्रसंग में माण्डवी ने जो नैतिकता- विहीन युवतियों का चित्र अंकित किया है उसमें आज के युग की फैशनपरस्त तितलियों के समान आचरणवाली रमणियों की भी समीक्षा हो जाती है। माण्डवी का विश्वास है कि पापी कितना भी बलवान क्यों न हो उसमें तत्वत: खोखलापन ही रहता है। उसे गज- मुक्त - कपित्थवत माना जा सकता है। वे बाह्यत: बली होते पर भी भीतर से, अपने इस पापाचार के कारण खोखले हो जाते हैं : --------

"नाथ बली हो कोई कितना,
यदि उसके भीतर है पाप,

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४०८

तो गजभुक्तकपित्थ- तुल्य वह
निष्फल होगा अपने आप ।[1]

आचरण , वाणी , व्यवहार और सौन्दर्य में माण्डवी स्वयं जगज्जननी सीता के ही समान हैं । यह समता कुछ ऐसी है कि स्वयं हनुमान को भी कुछ क्षणों के लिए शंका हो उठती है । साकेत में मूर्छा भंग होते ही उनकी स्मृति लौटने लगती है । वे रामवत भरत और लक्ष्मणवत शत्रुघ्न के मध्य बैठी माण्डवी को देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं और सोचते हैं कहीं यह सीता तो नहीं । हनुमान सोचते हैं कि कहीं मैं भाई लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर तो नहीं सो गया :-----

अहा ! कहाँ मैं , क्या सचमुच ही
तुम मेरी सीता माता ?
ये प्रभु हैं , ये मुझे गोद में
लेटाये लक्ष्मण भ्राता ? [2]

माण्डवी प्रिय के व्रत में व्रती होकर कर्तव्य पालन में मत्पर आनन्द की उपलब्धि करती है । उसके आनन्द की उदात्तता एवं घनीभूतता को वैषयिक आनन्द कहाँ से छू पा सकेगी ? जीवन स्त्रोतस्विनी के दोनों कगारों -- श्रेय और प्रेय को वह जानती और परखती है । जीवन- धारा की अतल स्पर्शी रस- माधुरी को धारण करने वाली माण्डवी तत्वत: श्रेय और प्रेय में किसी प्रकार का विरोध नहीं देखती । उसके लिए श्रेय ही सर्वाधिक प्रेय बन जाता है । उसमें धीरज है , गम्भीर चिंतन की शक्ति है और उदात्त वृत्तियों की गरिमा है । अतएव जब हनुमान के द्वारा लंका के युद्ध की विकट परिस्थिति का समाचार भरत के हृदय को उद्वेलित कर देता है तब माण्डवी भी विस्मय भरे विषाद के भार से आक्रान्त और अभिभूत हो जाती है । किन्तु वह अपना धीरज नहीं खोती । धीरज विवेक का सच्चे

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४१८
2- वही - 412

बड़ा सहारा है । स्वामी के प्रति उसकी सहानुभूति की गहराई का अन्दाजा इसी बात से लगता है कि वह क्रूरयाचक विधाता को अपना अन्य अवशिष्ट सुख भी देने को प्रस्तुत है । उसे आश्चर्य हो रहा है कि उनको विपदाओं में डालने वाला विधाता अब भी उससे क्या चाहता है ? क्या विदाओं का अवसान अब भी नहीं हुआ है ? माण्डवी देखती है कि उसका वीर पति विधाता को सर्वस्व (प्राण-तक) न्योछावर कर सकता है, किन्तु उसे अपने कर्तव्य का पालन करना है । वह लंका पर आक्रमण करेगा और कुल तथा देश की मर्यादा सीता के प्रत्यावर्तन में भाई के साथ सहयोग करेगा । माण्डवी कहती है कि हे स्वामी तुम नि:शंक भाव से शत्रु पर आक्रमण करो और कर्तव्य का पालन करो । प्रत्येक प्रयास में तुम हमें अपने साथ पाओगे । मुझे यमराज का भी भय नहीं है : -----

"स्वामी, निज कर्तव्य करो तुम निश्चिन्त मन से,
रहो कहीं भी, दूर नहीं होगे इस जन से ।
डरा सकेगा अब न आप दुर्दम यम मुझको,
है अपनों के संग मरण जीवन- सम मुझको ।"[१]

लक्ष्मण के आहत होने का समाचार अन्त:पुर में फैलकर सभी को अत्यन्त व्याकुल बना रहा है । उर्मिला के लिए सबके मन में सहानुभूति है । माण्डवी असीम धैर्य के साथ अन्त:पुर के सदस्यों को सान्त्वना देने और संभालने के लिए स्वामी से विदा लेती है और उन्हें युद्ध के लिए प्रयाण करने का अनुरोध करती जाती है । यह माण्डवी के आश्वासन और साहसपूर्ण सहयोग का ही फल है कि उसके देवर शत्रुघ्न का संकल्प भाग्य को पराभूत करने के लिए भी दृढ़ हो उठता है : ----

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४५१

"रूठा और अतुष्ट मनाने की बातों से
तो मैं सीधा उसे करूँगा आघातों से"।[१]

गुप्त जी ने अपने 'रंग में भंग' नामक खण्डकाव्य में पुरुष को कई स्थानों पर पति के रूप में चित्रित किया है। राणा 'शैलल' के साथ राणा लालसिंह की कन्या का विवाह होने पर राणा शैलल वर के रूप में कन्या का सर्वस्व हो गया। गुप्त जी ने राणा शैलल को पति के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है : ------

"अब वधू का विश्व में सर्वस्व वर ही रह गया"।[२]

पत्नी के लिए पति ही सर्वस्व होता है। वह पति को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए राज- पाट सब कुछ त्याग कर सकती है। पति के संसर्ग में रहकर व उसका सारा कष्ट सुख में परिवर्तित हो जाता है। उत्तरा अभिमन्यु को अपने ही पास रखने के लिए कातर स्वरों में कहती है : --------

"कुछ राज- पाट न चाहिए, पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही,
हे उत्तरा के धन! रहो तुम उत्तरा के पास ही"।[३]

क्षत्राणियाँ प्रियतम को रणयात्रा में हँसते- हँसते विदा करना अपना गौरव मानती हैं। पति के कीर्ति- पथ में बाधा डालना सती नारी कर्तव्य -विरुद्ध कार्य समझती है। पति के रणयात्रा जाते समय उत्तरा ऐसा ही कुछ कहती है :--------

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - साकेत : सं० २०२५ वि० : पृष्ठ - ४५३
२ - मैथिलीशरण गुप्त - रंग में भंग : २०२६ वि० : पृष्ठ - १०
३ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ वध : (६८वाँ सं०) २०३१ वि० : पृष्ठ - ६

क्षत्राणियों के अर्थ ही सबसे बड़ा गौरव यही -
सज्जित करें पति- पुत्र को रण के लिए जो आप ही ।
जो वीर पति के कीर्ति- पथ में विघ्न- बाधा डालती,
होकर सती भी वह कहाँ कर्तव्य अपना पालती । १

पति- पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त मधुर होता है । पत्नी के मन में यदि किसी प्रकार की बुरी भावना उठती है या कोई अपशकुन होता है तो सर्वप्रथम वह अपने प्रियतम के कल्याण के लिए ही प्रार्थना करने लगती है एवं पति को ऐसे स्थानों में जाने से रोक देती है । उत्तरा को भी कुछ अपशकुन दिखाई देते हैं । अतः वह प्रियतम को समर- भूमि में जाने से वारण करती है : ------

"मत जाइए सम्प्रति समर में प्रार्थना यह मानिए
जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में ।"
+ + +
रक्षा करें प्रभु - मार्ग में जो शूल हों वे फूल हों ।[२]

अपने ऐतिहासिक काव्य 'जयद्रथ-वध' में कलाकार ने पति के रूप में अभिमन्यु का अतीव सुन्दर चित्रांकन किया है । अर्जुन खाण्डव वन को गए हुए हैं । चौदह - वर्षीय वीर योद्धा अभिमन्यु चक्रव्यूह- भेदन के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं । पति को समर में जाते हुए देखकर उत्तरा का मन भावी आशंका से भयभीत हो जाता है । रण में जाने के लिए उद्यत अभिमन्यु अपनी कातर प्राण प्रिया को सांत्वना देते हुए कहते हैं कि तुम्हें इस प्रकार से व्याकुल देखकर मेरा मन अत्यन्त उदास हो जाता है :-----

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ वध : इकसठवाँ संस्करण २०३१ पृष्ठ - ६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ वध : " " २०३१ पृष्ठ - ६

जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये
कातर तुम्हें क्या चित्त में इस भाँति होना चाहिए
हो शान्त सोचो तो भला, क्या योग्य है तुमको यही
हा! हा! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही"।१

पति के बिना नारी की दूसरी गति नहीं है। पति भले ही पत्नी को छोड़ दे पत्नी उसे नहीं छोड़ सकती। रणक्षेत्र में अभिमन्यु की मृत्यु का संवाद पाकर उत्तरा करुण विलाप करती हुई कहती है :------

"तब तो मले ही तुम मुझे, मैं तज नहीं सकती तुम्हें,
वह बल कहाँ पर है जहाँ मैं भज सकती नहीं तुम्हें"।२

\+ \+ \+

"हम नारियों की पति बिना दूसरी गति होती नहीं"।३

पति- पत्नी का सम्बन्ध इतना दृढ़ होता है कि उसके टूटने पर पत्नी के लिए संसार में कोई कुछ नहीं रह जाता। अभिमन्यु की मृत्यु से उन्माद सी होकर उत्तरा विलाप करती है : -------

"निज प्रिय -- वियोग समान दुःख होता न कोई लोक में,
मति, गति, सुकृति, धृति पूज्य पति, प्रिय स्वजन, शोभन सम्पदा।
हा एक ही जो विश्व में सर्वस्व था तेरा सदा"।४

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथवध : पृष्ठ - ६, १०
२ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २१
३ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २२
४ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २२

पति के बिना पत्नी सनाथा हो नहीं सकती कभी ।१

पति की मृत्यु के बाद पत्नी को भी संसार में रहना काम्य नहीं होता उत्तरा कहती है : ------

है प्राण । फिर अब किसलिए ठहरे हुए हो तुम अब ।२

पत्नी की इच्छाओं की पूर्ति करना पति का कर्तव्य होता है । उत्तरा के शब्द इसी बात का अभिपोषण कराते हैं : ----------

पर चिबुक मम रुचि पूछते थे तुम बहु भाँति से ।३

उत्तरा के कथन से स्पष्ट है कि पति पत्नी की सर्वांग सुन्दरी समझता है :----

मेरे समान न मानते थे तुम किसी को सुन्दरी ।४

उसके मान करने पर पति विविध भाँति से मनाता है । उत्तरा कहती है : ----

प्रियतम । मनाते थे जिसे तुम विविध वाक्य- विधान से ।५

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २५
२ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २२
३ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २३
४ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध - पृष्ठ - २४
५ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ-वध : पृष्ठ - २४

पति- पत्नी, का प्रेम देखते ही बनता है। पति प्रियतमा के अंक में लेटकर अपनी सारी थकान भूल जाता है। उत्तरा कहती है : -----

रख शीश मेरे अङ्क में जो लेटते थे प्रीति से ।१

पुत्र वियोग से पिता का हृदय विदीर्ण हो जाता है। पुत्र ही पिता के लिए संसार का सबसे बड़ा सुख होता है। रणक्षेत्र में अभिमन्यु के वीरगति प्राप्त करने पर पितृव्य युधिष्ठिर विलाप करते हैं :---

संसार का सब सुख हमारा आप सपना हो गया ।२

गुप्त जी का कहना है कि पति के बिना प्रिया का जीवन भार सदृश हो जाता जाता है। पति के रूप में दुष्यन्त का अत्यन्त महत्व है। पति के सम्बन्ध में उसकी उक्ति है : ------

प्रिय बिना प्रिया से रहा नहीं जाता था ।३

पर अपनी पूर्ण प्रिया को नहीं भूल सकता था। राज्य करने के लिए गमनोद्यत राजा दुष्यन्त से शकुन्तला की सखियाँ सविनय निवेदन करती है कि वहाँ कार्य व्यस्तता में शकुन्तला को भूल मत जाइएगा। इस पर दुष्यन्त उत्तर देता हुआ कहता है :--

कैसे हम मन में व्यर्थ दोष लावेंगे ?
जो मन में है, किस भाँति भूल जावेंगे ? ४

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ वध : पृष्ठ - २५
२ - मैथिलीशरण गुप्त - जयद्रथ वध : पृष्ठ - २७
३ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवाँ संस्करण २०२६ वि० : पृ० - २[illegible]
४ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवाँ संस्करण २०२६ वि० : पृ० २[illegible]

पत्नी का दुख पति को सह्य नहीं होता । वह शीघ्रातिशीघ्र अपना प्राणप्रिया की विकलता को दूर करने का प्रयास करता है । विदा लेते समय दुष्यन्त अपनी प्राण - वल्लभा को अश्रु विमोचन करते देख अपने हाथों से उसे पोंछता है : ----

" पोंछ।उसका दृग- नीर स्वयं नृपवर ने,
जिससे प्रवाह में हृदय लगा था तरने ।
+ + +
जब तक अपार धन्य गण्य हों तेरे
होंगे आर्येगे तुझे योग्य जन मेरे "।[१]

शापग्रस्त दुष्यन्त प्रभाव वश शकुन्तला का त्याग कर बैठता है । जब उन्हें अपनी भूल का ज्ञान होता है और वे जानते हैं कि वह उनकी पत्नी थी तब वे अनुताप करने लगते हैं : ----

" जो थी कुल प्रतिष्ठा, निष्पाप धर्म-जाया,
मैं पुत्र रूप में था जिसमें स्वयं समाया ।
मुझ मूढ़ ने उसे हा । त्यागा तथापि ऐसे -
छोड़े सफल धरा को खोकर किसान जैसे "।[२]

उन्हें अपने अमानुषिक व्यवहार पर घोर पश्चाताप है : ----

" तबसे दूर प्रिया को मेरी फटी न छाती "।[३]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवाँ संस्करण २०२६ वि० पृ० २६ ।
२ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवाँ संस्करण : २०२६ वि० पृ० ४६
३ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवाँ संस्करण : २०२६ वि० पृ० ४६

पत्नी की याद उन्हें रह रहकर शल्य के समान चुभती है। अन्य किसी कार्य में उनका मन नहीं लगता :----

" सुध न थी सुख-साध-साज कहाँ गया,
और तो क्या राज काज कहाँ गया!
खान-पान कहाँ कि रुचि जाती रही,
सब गया बस याद ही आती रही "।१

पत्नी की दुरावस्था देखकर पति का हृदय विदीर्ण हो जाता है :---

" धूल भरे तनु- वस्त्र मलिन से हो रहे,
तू ने मेरे लिए हाय! ये दुःख सहे "।२

दुष्यन्त अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता है, वह शकुन्तला से कहता है ----

" मुझे क्षमा कर सुतनु दया का दान कर "।३

पत्नी पति के साथ प्रत्येक स्थान पर अपने को सुखी मानती है। वह पति के लिए अपना राजसी सुख त्याग कर वन में परिश्रम करके स्वावलम्बी बनने को अधिक श्रेष्ठ समझती है। पंचवटी काव्य में सीता वन में हर सम्भव कार्य अपने हाथों से करती है। वह पेड़ पौधों में पानी देती है, खेत को खुरपी से निराती है। पितृ-गृह में अत्यन्त स्नेह से पली सीता जो उषा की लालिमा से पूर्ण थी अब कंटकाकीर्ण

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवां संस्करण : २०२६ वि० : पृ० ४८
२ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवां संस्करण : २०२६ वि० : पृ० ६०
३ - मैथिलीशरण गुप्त - शकुन्तला : अठारवां संस्करण : २०२६ वि० : पृ० ६०

वन प्रदेश में आकर एकदम सामान्य नारी बन जाती है। श्रम और सेवा से उसे पर्याप्त सन्तोष है। लक्ष्मण सीता के चरित्र की स्पष्ट व्याख्या करते हैं : -----

अपने पौधों में जब भाभी
भर भर पानी देती हैं,
खुरपी लेकर आप निराती
जब वे अपनी खेती हैं,
पाती है तब कितना गौरव,
कितना सुख, कितना सन्तोष ।१

उसे अपने कार्य पर बड़ा गौरव है किसी विद्वान ने सीता के सम्बन्ध में लिखा है -- "वाल्मीकि और तुलसी की सीता तो महलों की मंजूषा में रहने वाली थी, मगर गुप्त की सीता सादगी की प्रतिमूर्ति और कर्म की प्रतीक बनकर आयी है। वह भारतीय ललनाओं का आदर्श बन गई है और यही उसके आदर्श की व्याख्या भी है वह अपने हाथों से हर सम्भव कार्य करती है तथा अपने श्रम पर उसे भरोसा और सन्तोष भी है"।२

कवि ने समाज की कामार्ता नारी का चित्रण शूर्पणखा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। शूर्पणखा पंचवटी नामक खण्ड काव्य की प्रतिनायिका है। वह कामार्ता रमणी है, जो लक्ष्मण पर मुग्ध हो उन्हें पति बनाने के लिए सचेष्ट हुई है। अपने प्रेम- प्रस्ताव को वह निःसंकोच प्रकट कर सकी है। उसका रूप चित्रण अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है :------

थी अत्यन्त अतृप्त वासना
दीर्घ दृगों से झलक रही

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - तिरसठवाँ संस्करण : पंचवटी : २०२८ वि० : पृ० १७
२ - राजेन्द्र राय 'राघव' : पंचवटी एक अध्ययन : प्रथम संस्करण : १९६८ पृ० १६

कमलों की मकरन्द- मधुरिमा
मानो छवि से छलक रही ।
किन्तु दृष्टि थी जिसे खोजती
मानो उसे पा चुकी थी
भूली- भटकी मृगी अन्त में
अपनी ठौर आ चुकी थी ।।१

गुप्त जी नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहते हैं कि नारी के हृदय सदैव ममता से भरा होता है : ----

ममता की क मरिताओं में ही
होती है मंजुमुली ।२

लक्ष्मण एक आदर्श पत्नीव्रत की सामाजिक मर्यादा के रक्षक हैं । अर्द्धरात्रि में सुन्दरी बाला के बार-बार प्रेम व्यक्त करने पर लक्ष्मण उसको पाप समझते हैं एवं कहते हैं : ---

पाप शान्त हो, पाप शान्त हो
कि मैं विवाहित हूँ बाले ।३

लक्ष्मण को कवि ने आदर्श पति के रूप में चित्रित किया है । वह एकनिष्ठ पत्नीव्रत- धारी हैं । अचानक आधी रात को सामने आयी एक परायी सुन्दरी

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - पंचवटी : पृष्ठ - २१
२ - मैथिलीशरण गुप्त - पंचवटी : पृष्ठ - २४
३ - मैथिलीशरण गुप्त - पंचवटी : पृष्ठ - ३२

युवती की तरफ वह झुककर आँख नहीं उठाते, क्योंकि वे विवाहित पुरुष हैं। वे पर नारी से संभाषण करना मर्यादानुकूल नहीं मानते। तभी तो शूर्पनखा से कहते हैं कि यदि मैं तुमसे पहले संभाषण करता तो पुरुषों की धर्म- परायणता कलंकित हो जाती : --------

पर मैं ही यदि पर नारी से
पहले संभाषण करता
तो छिन जाती आज कदाचित
पुरुषों की सुधर्मपरता ।१

\+ + +

सावधान हो मैं पर नर हूँ
छोड़ भावना का यह भ्रान्ति ।२

आदर्श पत्नी अपने प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती। वह पति के सुख से ही स्वयं सुखी एवं सन्तुष्ट रहती है। पति को प्रेम करने से वह जीवन का सर्वस्व प्राप्त कर लेती है। सीता लक्ष्मण से शूर्पणखा से विवाह कर लेने को कहती है। वह लक्ष्मण को आश्वासन दिलाती है कि वह कुत्सित कृत्य से उर्मिला तनिक भी दुखी नहीं होगी, क्योंकि हम स्त्रियाँ : ------

प्रिय से स्वयं प्रेम करके ही
हम सब कुछ पा जाती हैं
वे सर्वस्व हमारे भी हैं
यही ध्यान में लाती हैं। ३

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी : पृष्ठ - २४
२ - मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी : पृष्ठ - ३६
३ - मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी : पृ० ४४

समाज के वासनापूर्ण उच्छृंखल व्यक्तित्व का परिचय हमें शूर्पणखा के माध्यम से प्राप्त होता है। यह कामार्त्ता रमणी शूर्पणखा लक्ष्मण के प्रति प्रेम प्रकट करती है, परन्तु उस प्रेम को असफल देख तुरन्त राम के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट करने में तनिक संकुचित नहीं होती है इस सम्बन्ध में कमलाकान्त पाठक जी का कहना है कि तृष्णा वासना का मूर्त रूप धारण कर शूर्पणखा प्रमदा बन गई और लक्ष्मण को रिझाने लगी। जब लक्ष्मण को वह प्रभावित न कर पाई तब राम के प्रति आसक्ति दिखाने लगी। राम को अपना वर बनाने के लिए शूर्पणखा कहती है :----

पहनो कान्त, तुम्हीं यह मेरी
        जयमाला- सी वरमाला,
बने अभी प्रासाद तुम्हारी
        यह एकान्त पर्णशाला
मुझे ग्रहण कर इस माया के
        भूल जायेंगे भ्रू- भंग,
है मुकुट, कैलाश आदि पर
        सुख भोगोगे मेरे संग।[१]

यह कामार्त्ता नारी शूर्पणखा अपने वासनापूर्ण प्रेम को असफल होते देखकर अपना मनोज्ञ रूप त्याग कर दानवी रूप धारण करती है। "शूर्पणखा को जब दोनों ओर से निराश होना पड़ा तब उसका दानवी रूप प्रकट हुआ। वह प्रतिशोध लेने को सन्नद्ध हुई।"[२] प्रतिशोध की भावना से भरकर शूर्पणखा फुंकार कर उठती है :----

नहीं जानते तुम कि देखकर
        निष्फल अपना प्रेमाचार
होती हैं अबलाएँ कितनी प्रबलाएँ अपमान विचार।[३]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - पंचवटी : पृष्ठ ५२
२ - कमलाकान्त पाठक - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य पृ० सं० ३१२
3- मैथिलीशरणगुप्त- पंचवटी- पृष्ठ -- ५२

उसका रूप-परिवर्तन वस्तुत: उसके स्वाभाविक रूप का प्राकट्य है पर :-

" जहाँ लाल साड़ी थी तनु में, बना चर्म का चीर वहाँ
हुए अस्थियों के आभूषण थे मणिमुक्ता हीर जहाँ
कन्धे पर के बड़े बाल वे बने अहो! आँतों के जाल
फूलों की वह बरमाला भी हुई मुण्डमाला सुविशाल। "[1]

गुप्त जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में शूर्पणखा के बीभत्स रूप को बहुत अंशों में चित्रित करके यह दिखा दिया है कि शूर्पणखा का आलंकारिक छद्मवेश आरोपित था। वास्तव में वह अपने मूल स्वरूप में कुछ और ही थी। पौराणिक कथाओं में तो यहाँ तक वर्णन है कि उसका रूप बहुत बीभत्स और डरावना था। जो उसके नाम से ही प्रकट है। शूर्पणखा का शाब्दिक अर्थ है - शूर्प अर्थात सूप के समान नख अर्थात् नाखून हो जिसके। अपनी अभीष्ट सिद्धि न देखकर वह बदले की भावना से युगल बन्धुओं पर क्रुद्ध हो जाती है।

वनवास की कालावधि में घाव पर नमक छिड़कने के लिए कुरुराज दुर्योधन पाण्डवों के पास आते हैं। द्रौपदी उद्विग्न हो जाती है। पत्नी के अपमान का स्मरण कर एवं उसकी भावना का समादर करते हुए भीम उसे सान्त्वना देते हैं :-

" उचित आतिथ्य करूँगा मैं,
हीनता सभी हरूँगा मैं।
काल से भी न डरूँगा मैं,
कि मारूँगा कि मरूँगा मैं।
गिरा कर सु-गुरु गदा की गाज,
चुका लूँगा सब बदला आज। "[2]
x x x
द्रौपदी मत हो यों बेहाल

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; पृष्ठ - 61
2- मैथिलीशरणगुप्त - वनवैभव ; पृष्ठ - 13

भीम जीवित है अरि- मुख- काल
स्वकर कर शत्रु- रुधिर से लाल
वही बाँधेगा तेरे बाल"।१

कवि के अनुसार पति पत्नी को सर्वदा सुखी एवं सन्तुष्ट देखना चाहता है। वह स्वयं विपत्ति को सहता है एवं शोक संतप्त पत्नी को धैर्य दिलाता है। प्रस्तुत काव्य में पति के रूप में ब्राह्मण अपनी पत्नी को धैर्य दिलाता है। ब्राह्मण भलीभाँति यह जानता है कि वह वक- राक्षस के समक्ष जाकर वहाँ से जीवित लौट नहीं सकता, तथापि वह परिवार के सभी सदस्यों के मंगल के लिए वहाँ जाने को प्रस्तुत होता है। शोक संतप्त पत्नी को सांत्वना देता हुआ वह कहता है : ----

"मैं आज जाऊँगा स्वयं वक के निकट।
तुम लोग शोक न करो यों,
मत हो अधीर डरो न यों :
जब प्राकृतिक है तब मरण कैसा विकट"।२

सहधर्मिणी को मृत्यु- मुख से बचाना पति का कर्तव्य है। पाणिग्रहण कालीन प्रतिज्ञा के अनुसार पत्नी का सब भार पति पर रहता है, वह पति से अभिन्न हो जाती है। यहाँ ब्राह्मण की उक्ति दी जा रही है : -----

"पाणिग्रहण जिसका किया,
सब भार जिसका है लिया,
कैसे उसे मैं मृत्यु- मुख में छोड़ दूँ"।१

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - वनवैभव : पृष्ठ १४
२ - मैथिलीशरण गुप्त - वक-संहार : २०२१ वि० : पृष्ठ - ११

होमाग्नि सम्मुख विधि विहित,
जिसको किया निज मैं निहित,
सम्बन्ध उस सहधर्मिणी से तोड़ दूँ ? [1]

पति अपनी सहधर्मिणी के दु:ख को अपहारित करने का प्रयत्न करता है और उसे धैर्य देता है। ब्राह्मण पत्नी की व्यथा के अपनोदन का प्रयास करता है-

"ब्राह्मणि, सुनो, रोओ न यों
धीरज धरो खोओ न यों।"[2]

पत्नी एवं मातृत्व के रूप में नारी का चित्रण करते हुए गुप्त जी ने लिखा है कि वह अपने पुत्र एवं पति को हँसते- हँसते रणक्षेत्र में विदा कर देती है। कुन्ती अपने पुत्र भीम को बक के समक्ष भेजते हुए ब्राह्मणी से कहती है : -----

"रण में मरण तक के लिए
पति पुत्र को आगे किए
देती विदा है गर्व कर हम क्षत्रिया"।[3]

यशोधरा नामक खण्ड काव्य में पति सिद्धार्थ का चित्रण उचित ही है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य को जब भय चिन्ता होती है तथा वह किन्हीं दुष्परिणामों के सम्बन्ध में सोचता है, तब उसे सर्वप्रथम अपने सर्वाधिक प्रियपात्र की ही स्मृति हो आती है। एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर पति सिद्धार्थ का मन आशंकित हो उठता है। वह सोचने लगता है कि क्या उसकी प्रिय पत्नी यशोधरा

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - बकसंहार - २०२१ वि०, - पृष्ठ - १७
२ - मैथिलीशरण गुप्त - बकसंहार - २०२१ वि०, - पृष्ठ - १७
३ - मैथिलीशरण गुप्त - बकसंहार - २०२१ वि०, - पृष्ठ - ३५

कोमलांगिनी यशोधरा भी एक दिन वृद्ध हो जायगी ? उसकी स्वर्णिम कान्ति और यौवन-प्रदाय रूप में नहीं रहेगा ? सिद्धार्थ सोचता है कि उसको पत्नी यशोधरा उपवन के समान है, जो कालान्तर में सूख जाता है एवं अपनी समस्त सुन्दरता से रिक्त हो जाता है :-———

"देखी मैंने आज जरा !
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?
हाय ! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण- सुवर्ण खरा
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?"[1]

"अभिताभ की आभा से चौंधियाए हुए भक्तों को यशोधरा की पीड़ा का, मानवीय सम्बन्धों के अमर गायक, मानव- सुलभ सहानुभूति के प्रतिष्ठापक श्री मैथिली-शरण की अन्तर्प्रवेशिनी दृष्टि ने ही सर्वप्रथम साक्षात्कार किया । यशोधरा के मानस में उमड़ती हुई भावनाओं की परिव्यक्ति के निमित्त लेखक ने कथानकगत अनेक नूतन उद्भावनाएँ की - वस्तुतः अश्रुतपूर्व कथा की सफल कल्पना की है ।"[2]

सिद्धार्थ जीवन के सत्य को खोजने की अभिलाषा अनवरतकरते रहे हैं, परन्तु आज उनको वन जाने का एवं सत्य की खोज करने का उचित अवसर मिला है, वह यशोधरा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम्हें आज विवाहित जीवन का समस्त सुख प्राप्त है, पुत्र रत्न की भी प्राप्ति तुम्हें हो चुकी है । अतः तुम्हें सुखी देखकर मैं भी अपने लक्ष्य की पूर्ति करना चाहता हूँ । मैं सत्य की खोज कर जीवन को सुखी बनाना चाहता हूँ । वह कहते हैं कि जिस कार्य के लिए मैं जाना चाहता हूँ उसमें पत्नी बाधा- स्वरूपा है, तुम्हें बिना जगाए ही मैं जा रहा हूँ :———

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा-२०२८-पृष्ठ - १५

२ - उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- १९५८ ई० - पृष्ठ - ३६

" अयि गोपे, तेरी गोद पूर्ण,
तू हास-विलास-विनोद-पूर्ण।
अब गौतम भी हो मोद-पूर्ण,
क्या अपना विधि है आज वाम? "[1]

सिद्धार्थ इस कार्य के लिए अपने को अपराधी नहीं मानते हैं। परन्तु बुद्ध के जीवन से संबद्ध दूसरे साहित्य में इस परिस्थिति की इस रूप में अभिव्यक्ति नहीं मिलती। वहाँ सिद्धार्थ अपने को गोपा के प्रति स्पष्ट रूप से अपराधी मानते हैं। इसके विपरीत गुप्त जी ने इस भाव का निवारण कर सिद्धार्थ को पूर्णत: न्यायसंगत सिद्ध करने की चेष्टा की है। यह ठीक भी है। यद्यपि परिस्थिति का दूसरी दृष्टि से अध्ययन करने पर हम सिद्धार्थ की इस क्रिया में दोष भी पा सकते हैं, तथापि इस प्रकार की भावात्मक सत्ता की स्थिति यहाँ इतने रूप में नहीं है। यदि निर्वेद के पथ पर अग्रसर होते समय बुद्ध अपने मानस में इस प्रकार की आशंका अथवा अपराधी भावना लेकर चलते तो वे निश्चय रूप से वे इतनी शांत मनसा से चिन्तनरत न हो पाते। अत: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी गुप्त जी के कथानक में संशोधन तर्क सम्मत है।"[2]

भारतीय नारी पति के जीवन-व्रत को ही अपना व्रत मानती है। उसके लिए सबसे बड़ा कर्तव्य पातिव्रत धर्म ही होता है। समाज, देश, जगत अथवा किसी भी वृहत्तर और महत्तर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संकल्पित पति को वह सदैव अपना सहयोग और प्रेरणा से सम्पुष्ट करती रहती है। स्वकीय सुख की लिप्सा अथवा संकीर्ण स्वार्थ-वृत्ति उसे अपने पवित्र पथ से विचलित नहीं कर सकती। पत्नी का कार्य पति को सभी संकल्पों और प्रयत्नों में मंत्रणा, सहायता और सहयोग देने का है। इन अवसरों से वंचित होने में वह अपना पराजय और अपमान मानती है। इसीलिए गोपा

1- मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा ; पृष्ठ - 26

2- सरस्वती संवाद, अप्रैल 1953 ; पृष्ठ - 336

पश्चाताप की ज्वाला से दग्ध है। उसे इस बात का दुःख है जगत के त्राण और कल्याण के लिए संकल्प ग्रहण करने के पूर्व और संन्यास लेने के पूर्व उसके प्रियतम सिद्धार्थ ने उसे कहा और पूछा तक नहीं। वह वीर क्षत्राणियों की तरह उन्हें सोत्साह विदा करती है :-----

" स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में, --
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि वे मुझसे कहके जाते "[१]

'यशोधरा' में कवि ने गोपा के कार्य- व्यापार का प्रसार नहीं दिखाया है, वरन् उसकी भावनाओं के दिव्यलोक की झाँकी दिखाई है। इसमें अनेक स्थानों पर स्वगतकथन के द्वारा घटनाओं के चक्र को आगे बढ़ाया गया है। प्रिय- गर्विता गोपा लोगों के पूछने पर क्या उत्तर देगी ? गोपा अपने आपको लोगों की दृष्टि में लघु मानने के लिए बाध्य हो गई है। यदि उसके प्रियतम उसे कहकर गये होते तो उसे इस ग्लानि पूर्ण स्थिति का सामना करना न पड़ता। शुद्धोदन जब बुद्धदेव को सीख कराना चाहते हैं तो गोपा निषेध करती है। वह कहती है कि उन्होंने ज्ञान का उजाला पा लिया है। वे असमर्थ अथवा अस्थिर नहीं हैं। जिस संकल्प को लेकर गये हैं उसे पूरा करके ही छोड़ेंगे। अतएव उन्हें बुलवा कर कर्तव्य- विमुख कर देना अनुचित है। पति के व्रत और संकल्प का ध्यान कर यशोधरा ने हेमहार, मणिमाला, अंजन, अंगराग और अन्यान्य आभूषणों का त्याग कर डाला। उसने अपने केश का भी मुण्डन करा दिया। गोपा के मन में इस बात का गर्व है कि उसके पति ने जगत में अनूठा आदर्श स्थापित किया है। वे जीवन की परीक्षा

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा : २०२८ वि० - पृष्ठ - ३२

में उत्तीर्ण हो चुके हैं। आदर्श पत्नी होने के नाते अब उसकी बारी है कि वह जीवन में उत्तीर्ण हो : -----

"अब कठोर हो वज्रादपि ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी"।१

यशोधरा यह सोचती है कि उसके प्रियतम की गौरव गाथा में उसकी करुण कथा का लेश भी नहीं रहेगा। उसके प्रियतम मुक्ति को अपनी रानी बनाने जा रहे हैं, जिससे जगत के दुःख और दैन्य का नाश होगा। वह अपने को उनकी दासी मानने में भी अपना सौभाग्य समझती है : ------

"जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी,
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ मैं मरसक, देखूँ बस हे दानी -
कहाँ तुम्हारी गुण- गाथा में मेरी करुण- कहानी"।२

गौतमी जब यशोधरा के सम्मुख सिद्धार्थ की निर्दयता का दोषारोपण करती हैं तब वह प्रत्याख्यान करती है। गौतमी की दृष्टि में स्वर्ण का सौध सुन्दरी पत्नी और जननी जन्मभूमि की ममता भी जब उन्हें बाँध नहीं सकी तो वे निश्चय ही निर्दय हैं। यशोधरा अपनी सखी के साथ सहमत नहीं होती। वह कहती है : ----

"अरी सदा माँ की गोद में ही बैठे रहने के लिए पुरुषों का जन्म नहीं होता। स्त्रियों को भी पति के घर जाना पड़ता है। सारा विश्व जिनका कुटुम्ब है उन्हें

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा : सं. २०२८ वि० पृष्ठ - ५२
२ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा : सं. २०२८ वि० पृष्ठ - ५४

जन्मभूमि का बन्धन कैसे बाँध सकता है । १

यशोधरा केवल चार चूड़ियाँ और सिन्दूर बिन्दु धारण कर, उत्कृष्ट वस्त्र और झांकीरों का त्याग कर तथा पति के न्यास राहुल की नानाविधि शिक्षा का प्रबन्ध कर पति के वृतों का पालन करती है । वह पुत्र को नाना उपदेश देकर योग्य नागरिक बनाकर अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहती है ।

सिद्धि पाकर सिद्धार्थ बुद्ध बन गए । कपिलवस्तु में उनका आगमन हुआ । सारा नगर उनके अभिनन्दन और दर्शन के लिए उमड़ पड़ा, किन्तु गोपा अपने घर से टस से मस तक न हुई । सास और ससुर के अनुरोध करने पर भी वह मानिनी बनी बैठी ही रही । सिद्धार्थ को संन्यास के सारे नियमों का उल्लंघन कर राजप्रासाद में अपनी परित्यक्ता पत्नी के पास आना ही पड़ा । बुद्धदेव गोपा के सम्मुख उसकी महिमा का स्वयं इन शब्दों में बखान करते हैं और अपनी सिद्धि का समस्त श्रेय उसी को प्रदान करते हैं :-------

"दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत- दया- मूर्ति वह मन से, शरीर से,
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से ।
आया जब मार मुझे मारने को बार बार
अप्सरा- अनीकिनी सजाये हेम- हीर से ।
तुम तो यहाँ थी, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से ।"२

बिछुड़े पति को आज सिद्ध और संन्यासी के रूप में पाकर भी यशोधरा गौरवान्वित है । उसने पत्नी के प्रिय, मधुर और कठोर धर्म का पूर्ण सफलता के साथ निर्वाह

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा ; सं. २०२८ वि० पृष्ठ - ११२
२ - मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा ; ,, पृष्ठ - २०६

किया है। पति के विश्वविश्रुत रूप की गरिमा के रक्षण के लिए वह अपने जीवन की आशा के एक मात्र केन्द्र राहुल को भी उनके चरणों पर अर्पित कर उनका अनुगामी बना देती है। इससे अधिक उदात्त त्याग और क्या हो सकता है। भारतीय पत्नी की गौरव- गाथा में आज यशोधरा का नाम अत्यधिक जाज्वल्यमान है।

पत्नी पति के दुःख से पीड़ित हो उठती है। 'द्वापर' में पति वसुदेव की दशा से देवकी का हृदय विदीर्ण हो जाता है। अत्याचारी कंस को भय है कि देवकी के गर्भ से ही उसे मारने वाला उत्पन्न होगा। अतः उसने देवकी एवं उसके पति वसुदेव को कारागृह में डाल दिया है। पत्नी देवकी कारागार में पति के दुःख से अत्यन्त व्यथित है। वह कहती है :------

"दासी के पीछे दुःख पर दुःख
सहना पड़ा तुम्हें है,
पुनरपि रुद्ध गुहा से गृह में
रहना पड़ा तुम्हें है।
पर क्या हा विश्वासी हो तुम,
जो अब भी आनन्दी,
हे मेरे राजा, तथापि तुम
बने अराधक बन्दी"।[१]

वसुदेव और देवकी के मन में इतनी ही सांत्वना है कि लोक- जीवन तथा लोक- दृष्टि से पृथक रहकर भी उन्हें एक लाभ तो है ही और वह यह कि कारागार में भी वे एक साथ हैं :------

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - द्वापर : सं० २०२१ वि० : पृष्ठ - ८२

"कारागृह में हैं हम दोनों,
गिनो लाभ ही इसको,
और नहीं तो बाहर रहकर
मुँह दिखलाते किसको ?
कुछ सुन पड़ता नहीं हमें अब
कोई क्या कहता है,
यह सुविधा भी सहज किसी को
दैव कहाँ सहता है ?"[1]

नहुष नामक खण्डकाव्य में गुप्त जी ने कामातुर पुरुष का चित्रण नहुष के रूप में चित्रित किया है। वह सद्यः स्नाता इन्द्राणी को देखकर उस पर आसक्त हो उठा है। नहुष अपने इन्द्रत्व को इन्द्राणी के अभाव में अधूरा मानता है। वह दूती के माध्यम से अपने काम- भाव को शची के समक्ष व्यक्त करता है :-----

"काम ने फँसाया मुझे ऐसा वैजयन्त में,
राते चरणों का अपराधी किया अन्त में"।[2]
\+ \+ \+

"अब सिर को भी टेकने को एक ठौर हो,
उन चरणों को छोड़ कौन वह और हो ?"[3]
\+ \+ \+ \+

"सह नहीं सकता विलम्ब और मैं,
आज्ञा मिले शीघ्र मुझे, आऊँ कहाँ- कब मैं"।[4]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - द्वापर : सं० २०२१ वि० : पृष्ठ - १०६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष, पृष्ठ - ४७
३ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष, पृष्ठ - ४८
४ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष, पृष्ठ - ४८

नहुष के दूषित प्रस्ताव को सुनकर पतिव्रता शची मर्माहत हो जाती है। ग्लानि, क्षोभ, चिन्ता और भय से वह व्यग्र हो जाती है। वह पति- वियोग के कारण व्यथित है। सुरराज शक्र के स्वर्गभ्रष्ट होने पर शची समस्त वैभव समाप्त हो जाता है। उसकी दशा अत्यन्त दयनीय है :-----

"बी रही है देवराज्ञी, जैसे मरे भ्रमरी,
मंडरा रही है शून्य वृन्त पर भ्रमरी"।[१]

इन्द्रासन पर नहुष के आसीन होने पर स्वर्ग में सर्वत्र शान्ति छायी हुई है, सुर-लोक आनन्द मग्न है, किन्तु शची एकदम दु:खी है। कवि उसकी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं : -----

"किन्तु कान्ति- हीना आज इन्द्राणी सशोक है।
भ्रान्त- सी सखी के साथ तीर पर आ गई,
शान्त वायुमण्डल में मानो क्रान्ति छा गई"।[२]

सखी से कहे गये वचनों से उसकी मनोदशा स्पष्ट है :-----

"क्या थी, अब कौन हूँ, कहाँ थी, अब मैं कहाँ?
क्या न था परन्तु अब मेरा क्या रहा यहाँ
आज मैं विदेशिनी हूँ अपने ही देश में,
बन्दिनी- सी आप निज निर्मम निवेश में"।[३]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : पृष्ठ - १६
२ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ - १६
३ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ - १७

इन्द्राणी की आकृति का बड़ा ही सजीव चित्रण कवि ने उपस्थित किया है। नहुष के इन्द्र के आसन पर आसीन होने से इन्द्राणी को हार्दिक कष्ट है। वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए चिन्तित है। पति के विरह में व्याकुल, चिन्तित एवं रोष से उद्दीप्त है। उसकी आकृति का चित्रण करते हुए कवि कहता है :--

"दीख पड़ी अश्रुमुखी धूल- धुली माला- सी,
किंवा धूम- राशि में से जागी हुई ज्वाला सी।"[1]

सुरराज इन्द्र के वियोग में पत्नी शची अत्यन्त विकल है। वह सखी से कहती है :--

"ठीक सखी, किन्तु मन कैसे रहे हाथ का,
गेह गया और साथ छूटा निज नाथ का।"[2]

शची सतीत्व को सबसे बड़ा धर्म मानती है। कामातुर नहुष के दूती - द्वारा प्रेम संदेश भेजने पर शची अत्यन्त क्रुद्ध हो उठती है। भारतीय नारी अपने सतीत्व की रक्षा धन, धाम, गुण- कर्म के द्वारा करने को तत्पर रहती है। शची भी अपना सर्वस्व त्याग कर देती है, परन्तु सतीत्व की रक्षा करती हुई वह कह उठती है :-----

"सौंपा धन-धाम तुम्हें और गुण- कर्म भी,
रख न सकूँगी हम अन्त में क्या धर्म भी?"[3]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ २०

२ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ - ४६

३ - मैथिली शरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ - ४६

वह नहुष को दूती के माध्यम से फटकारती हुई कहती है : ------

"त्यागो शची- कान्त बनने की पाप- वासना,
कर लें ररत्व भी न काम- देवोपासना"।[१]

'विष्णुप्रिया' में श्री चैतन्य महाप्रभु एवं उनकी प्राणवल्लभा गृहिणी विष्णु-प्रिया का वृत्त कविता बद्ध हुआ है। इस उत्कृष्ट रचना में कतिपय स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। "प्रबन्ध काव्य में यद्यपि समग्र जीवन अथवा खण्ड जीवन आता है। किन्तु उसके प्राण हुआ करते हैं कतिपय मर्मस्थल। इन मर्मस्थलों को ही तो प्रबन्धकाव्य में महत्व होता है -- बाकी सब कुछ उन्हीं के परिदर्शनार्थ आया करता है या फिर जैसा कि शुक्ल जी कहते हैं शेष इतिवृत्त इन स्थलों तक पहुँचने के लिए होता है। वास्तव में कथा के मार्मिक प्रसंगों का चयन और सप्रभाव पुरस्करण ही सच्चे प्रबन्धकार के लक्षण हैं। यही उसकी कुशल प्रबन्ध- कल्पना का परिचायक है"।[२]

गृहस्थाश्रम को लोग बहुधा भोग और विलासिता का आश्रम समझ बैठते हैं। जिन्हें भारतीय परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तों और भारतीय जीवन के मूल्य- बोधों का ज्ञान नहीं है, उनके लिए यह भ्रान्ति स्वाभाविक ही है। हिन्दुओं के जीवन दर्शन में कहीं भी कामुकता को स्वच्छन्द नहीं किया गया है। गृहस्थाश्रम के प्रसंग में विवाह के विषय में हिन्दुओं की यह मान्यता है कि मनुष्य की प्रबल इन्द्रिय लालसा का संकोच करके उसे एक सीमा में आबद्ध करने के लिए विवाह आवश्यक है। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि भोग से संयम की ओर, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर तथा भौतिकता से भगवान की ओर बढ़ने के लिए विवाह का बंधन

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - नहुष : सं० २०२४ वि० : पृष्ठ - ४६

२ - डा० उमाकान्त - मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता सन् १९५८ : पृष्ठ - १०९

आवश्यक है। इसके मूल में भोग लिप्सा की वृत्ति नहीं, वरन् प्रजनन की अनिवार्यता का साधन है। हिन्दुओं में विवाह को एक धार्मिक संस्कार माना गया है। संस्कार से मनुष्य के अन्तस्तल की परिशुद्धि होती है और शुद्ध अन्तःकरण में तत्वज्ञान, भगवत् प्रेम और लोक- मंगल का प्रादुर्भाव होता है जिसे जीवन का चरम पुरुषार्थ माना गया है। नर और नारी विवाह-संस्था के द्वारा एक- दूसरे के जीवन में प्रवेश करते हैं। उनका सम्मिलित जीवन ही गृहस्थाश्रम कहलाता है। यह गृहस्थाश्रम न तो काममूलक है और न तो स्त्री- पुरुषों को अनिर्बन्ध कामोपभोग का अनुमति पत्र देनेवाला ही है। जो निष्ठा वैवाहिक जीवन का मेरुदण्ड मानी जाती है। वह मनुष्य को शारीरिकता से ऊपर उठा देती है। उसका उद्देश्य संतति-प्राप्ति और वृत्तियों का सुनियोजन है। तत्वतः जीवन में काम को किसी अपराध या दोष के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है। विवाह के पवित्र संकल्पों के माध्यम से यही काम लौकिक और नैतिक सम्पन्नताओं का आधार बनता है। विवाह आध्यात्मिक विकास का साधन है, न कि मानवीय दुर्बलताओं का पूरक। विवाह और गृहस्थाश्रम संयम- पालन के लिए है और इस प्रकार मूलतः ब्रह्मचर्य के साधक हैं।

विष्णुप्रिया" में हम गुप्त जी के द्वारा स्वीकृत, आदृत, समर्थित और प्रचारित इन्हीं मूल सिद्धान्तों के प्रतिफलित रूप के दर्शन पाते हैं। विष्णुप्रिया आत्माभिव्यक्ति और आत्मविस्तार के पूर्ण अवसर उसी परिसर में प्राप्त करती है जिसमें उसके पति आत्मविस्तार के विराट आयाम का दर्शन पाते हैं। अतएव यहाँ हम अधिकार और कर्तव्य स्वार्थ और परमार्थ तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय पाते हैं। इसके द्वारा समाज के विरोध और संघर्ष की सम्भावनाओं का उन्मूलन तथा सौहार्द्य और उदात्तीकरण का अभिव्यंजन होता है। भारतीय नारी त्यागमय होती है। विष्णुप्रिया ने सदा ही अपने आंसू पीकर यही कामना की है कि उसका पति जीवन के उन्नत शिखर पर पहुंच कर आत्मविस्तार की ध्वजा उत्तोलित करे। गुप्त जी ने विष्णुप्रिया से कहलवाया है :----

"त्याग पर तेरी नींव टिकी,"

देखलि, क्या दो बूंद रक्त पर तू इस हाथ फिकी हूं
देने को प्रस्तुत हूं मैं तो अपना जीवन धार,
वार दिया पहले ही मैंने तुझ पर सब घर बार
नाथ चरण से कृपा न दबाते तो क्या रुकती धार ?
किन्तु रही मिथ नख से शिख तक गूंजे तनु के तार ।
तुम्ही पदस्पर्श- मद- विह्वल मेरी प्राण- पिकी ।
त्याग पर तेरो नींव टिकी "।[1]

ईशावास्योपनिषद के प्रथम मन्त्र में त्यागमय भोग को जीवन का काम्य माना गया है । "हिन्दू- संस्कारों का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुमुखी और पूर्ण विकास है । हिन्दू समाज के कुछ अपने आदर्श हैं । वह चाहता है कि व्यक्ति को सहज रूप में विकसित होने की स्वतंत्रता न देकर उसे विशेष आदर्शों के अनुरूप ढालना चाहिए । जब तक ऐसा नहीं किया जायगा, तब तक वह अपने प्राकृत स्वरूप को त्याग करके परिष्कृत और संस्कृत जीवन को अपना नहीं सकता है, जो कि नितान्त आवश्यक है तथा जो समाज के संगठन और निर्माण में एकरूपता लाने के लिए अपरिहार्य है"।[2] स्वामी के निष्क्रमण के पश्चात् विष्णुप्रिया की भावना का जो उदात्तीकरण हुआ है उसका अन्तस्तल- स्पर्शी चित्र इस छन्द में अंकित है :-----

"मिला स्वयं मुझको संन्यास,
घर बैठे ही पाया मैंने
उसको बिना प्रयास ।
प्रिय न छोड़ें, मुझसे छूटे

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ - २०

२ - श्री शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय संस्कृति और समाज : सन् १९७० पृष्ठ २२९

भव के भोग-विलास,
उभरी है यहीं ही - गंभीरता
डूब गया है हास ।
देखे वे अपने सम्मुख यह
प्रेम- रहस्य, रस- रास,
मेरी यह प्रत्यक्ष देवता
~~[illegible]~~
मेरी दुखिया सास ।"[1]

भारतीय समाज- शास्त्र के निर्माताओं का यह मत था कि जीवन का प्रत्येक पक्ष नियमबद्ध होना चाहिए । अतः उन्होंने संस्कारों की एक ऐसी व्यापक योजना बनाई कि वे (संस्कार) व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन से सम्बद्ध हो गए । संस्कारों के मूल उद्देश्यों में प्रभूत सुनिश्चितता एवं उपादेयता का समावेश था । वे मानव जीवन के परिष्कार और उदात्तीकरण में सहायक थे । व्यक्तित्व के विकास को वे सुविधाजनक बनाते, मनुष्य- देह को पवित्रता तथा महत्त्व दान करते, उसकी समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाओं को गति देते तथा अन्त में उसे जटिलताओं और समस्याओं के संसार से शान्ति सानन्द मुक्ति प्रदान करते थे । विवाह के पश्चात् विष्णुप्रिया पति की अर्द्धांगिनी ~~[illegible]~~ बन गई है । उसका सर्वस्व एवं एकमात्र धन उसका पति ही है । बिना पति के उसका जीवन व्यर्थ है । पति के जीवन के व्रत को ही अपना व्रत बनाने में उसके जीवन की सार्थकता है । उन्हें जीवन्मुक्त बनाकर विश्व के उद्धार और कृष्ण के व्यापक प्रेम- धर्म का प्रचार करने में संकल्पित करा देने में ही विष्णुप्रिया के जीवन की सार्थकता है । तभी तो वह ऐसा कहती है :-------

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ : पृष्ठ - ६७

"स्वामी त्याग गये हैं गेह,
प्रस्तुत हूँ मैं, तब हूँ गेह ।
मुझे प्रयोजन अब किस धन का ?
फल क्या मेरे इस जीवन का ?
शेष नहीं कुछ तन का मन का
जला रहा है जलता स्नेह
स्वामी त्याग गये हैं गेह ।
वे हैं जीवन्मुक्त विचरते,
ये अरुद्ध प्राण हैं भरते,
देश काल दोनोंसे डरते,
बाहर बिजली, भीतर मेह ।
स्वामी त्याग गये हैं गेह"।१

भारतीय विवाहित-जीवन में दायित्वों का बहुत भारी बोझ आ पड़ता है । इन उत्तरदायित्वों का पूरा करना बोझ नहीं समझा जाता है, बल्कि धर्म माना जाता है । भारतीय परिवार में पुरुष का मुख्य कार्य धन- उपार्जन करना है । वह घर से बाहर के कार्यों को करता है तथा धन पैदा करके गृहणी के हाथ में सौंप देता है । घर के अन्दर पुरुष सबसे पहले पति के रूप में अपनी स्त्री के प्रति उत्तरदायी होता है । चूंकि उसकी पत्नी केवल उसी के सहारे होती है । अत: उसका कर्तव्य कर्तव्य होता है कि वह उसकी समस्त आवश्यकताओं को पूरा करे ।वह अपनी पत्नी से गृहस्थी के प्रत्येक कार्य में सलाह लेता है तथा अपने सुख- दु:ख की कहानी सुनाता है । पति-पत्नी गृहस्थी रूपी गाड़ी के दो पहियों के समान रूप में कार्य करते हैं । इसलिए हमारे यहाँ पत्नी को अर्धांगिनी या सहधर्मिणी कहते हैं

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ५१

गृहस्वामिनी के रूप में एक भारतीय स्त्री गृहस्थी के समस्त कार्यों का कुशलता पूर्वक प्रबन्ध करती है। वह घर के समस्त सदस्यों के लिए समय पर भोजन तैयार करती है, गृहस्थी के लिए खरीद करती है, गृहस्थी के समस्त कार्य-क्रमों को संचालित करती है और सरलता, शान्ति एवं सहिष्णुता का वातावरण उत्पन्न करती है। उसका गृहस्थी का सम्बन्ध उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पति का धनोपार्जन का कार्य। जिस प्रकार पति को अपने व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाने के लिए कुशलता की आवश्यकता पड़ती है उसी तरह एक स्त्री को भी घर में शान्ति एवं सुख का वातावरण उत्पन्न करने तथा प्रत्येक कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार गृहणी के रूप में भी स्त्री के अनेक कर्तव्य होते हैं। पतिके पद चिह्नों पर चलने वाली और उन्हीं के भाव में भीनी विष्णुप्रिया प्रिय के त्याग और तपस्या की स्पृहा के कारण कहती है : ----

" प्रिय की-सी तन्मयता आती
तो जैसे पति वे प्रभु को
मैं भी उनको पाती।
अपना ज्ञान गवाँ सकती तो
उन- सा ध्यान लगाती,
कह सकती हूँ केवल इतना
मैं उनकी मद-माती।
खोज रही है उनकी काया
जैसे जलती बाती
यहाँ उन्हीं तक मेरी मति है,
गति ही रुक रुक जाती।"[1]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ७६

कवि ने विष्णुप्रिया के अन्तर्द्वन्द्व का बड़ा ही सफल चित्रण किया है । उन्हें इस बात की चिन्ता है कि पति छिपकर क्यों चले गये ? वे उसे इतना भी गौरव नहीं प्रदान कर सके कि वह वीर पत्नी की भाँति उन्हें विश्व कल्याण के लिए विदा दे सकती । इस आशय के चिन्तन ने उसे विह्वल और दयनीय बना दिया ---

"हाय ! मैं छली गई हूं, छिपकर भागे वे,
जागकर आप यहाँ मुझको सुला गये ।
जागी फिर क्यों मैं, क्यों न रह गई सोती ही ?
जानती थी, बंधक न होंगे, विदा लेंगे वो
पूजकर उनको विसर्जित करूँगी मैं ।
इतनी भी सांत्वना न दे गये वे मुझको ।
चाहते नहीं वे व्यर्थ दु:खी हमें देखना,
आँख मूँद मारते हैं, कैसा कृपालु हैं"।[1]

पति ही पत्नी के लिए सर्वस्व है । विष्णुप्रिया अपना सब कुछ गवाँ कर भी अपने जीवन-धन को पाना चाहती है । उसी में वह तीनों लोकों का ऐश्वर्य और वैभव पा जाती है । प्रिय की प्रतीक्षा वह अँखिया बिछाऐ करती है ---

"अब तक लौटे नहीं प्रवासी ।
देखा करती है ऊपर चढ़ दूर दूर तक दासी"।[2]

पत्नी अपने पुण्य-कृत्यों से तथा त्याग से पति के जीवन को संवार देना चाहती है -

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ४७

२ - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ५५

मेरे त्याग में ही तो तुम्हारा त्याग पूरा है ।[1]

अपने पति को पाकर विष्णुप्रिया अपने को धन्य मानती है । मानो उसे आशातीत निधि मिल गई हो । सारी धरती उसे असीम आनन्द से भरी हुई मालूम पड़ती है । वह समझ नहीं पाती इतने सौभाग्य को कहाँ और कैसे सम्भालकर रखेगी :--------

"मिला अचानक मुझको इतना
यह भी नहीं जानती हूँ मैं, वह यथार्थ में कितना है
उसे लोभती सी है धरती,
अपने में आकर्षण भरती ।
कर सकती हूँ जितना,
मिला अचानक मुझको इतना"।[2]

रूप- गुण गर्विता विष्णुप्रिया अपने लावण्य तथा सेवा से मुग्ध कर पति को परिवार के बन्धन में बाँध न सकने के कारण अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित है :------

"आई इतनी ही काम
तपस्या भी जो मेरी संचिता,
मेरे घर आये राम
उन्हें रख सकी न मैं विधि- वंचिता"।[3]

---

1 - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० :पृष्ठ ४१
2 - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ २५
3 - मैथिलीशरण गुप्त - विष्णुप्रिया : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ६३

पत्नी के रूप में नारी चित्रण करते हुए गुप्त जी कहते हैं कि पत्नी के लिए पति ही सर्वस्व है। पति के विरह में उसका समस्त सुख चला जाता है, उसके लिए पति ही सर्वस्व है। पति के विरह में उसका समस्त सुख चला जाता है, किन्तु वह पति की उन्नति के लिए अपने स्वार्थ का भी त्याग कर सकती है। पत्नी के रूप में रत्नावली पति के प्रेम से गर्विता है। तथापि वह अपने पति की मंगल कामना के लिए तथा महत् कार्य के द्वारा उसके जीवन को सफल करने के लिए उसे राम की उपासना करने को कहती है :------

"करते हो जो प्यार हाय ! उस
चार दिन के चाम को,
जन्म सफल कर कोई उससे
पा सकता है राम को।
धिक् मुझे और तुमको भी"[1]

शुभ कार्य एवं महत् कार्य, जिससे पुण्य और यश की प्राप्ति होती है ऐसे कार्य के लिए वह घर- दिन से भी वंचित होकर रह सकती है और यदि पति मंगल एवं पुण्य कर्म में सफल हो जाता है तो पत्नी को उसका खोया सर्वस्व मिल जाता है। पत्नी रूप में रत्नावली कहती है :------

"राम- कृपा से मेरी आशा
सखि, यदि पूरी हो गई,
तो मैं लाभ सहित पा लूँगी
जो मेरी निधि खो गई।

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : २०१७ वि० : पृष्ठ १०

मैं अपनी चिन्ता करूँ छोड़ूँ उनका ध्यान,
नहीं चाहिए सखि मुझे ऐसा आत्मज्ञान"।[१]

नारी को पत्नी रूप में चित्रित करते हुए गुप्त जी ने रत्नावली नामक काव्य में पति (ब्राह्मण) के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या की है :----

"कहीं कामिनी, कहीं भामिनी,
कहीं मात्र है स्वामिनी,
मन के साथ बुद्धि से भी तुम
हो मेरी सहगामिनी।"[२]

इसी आशय का भाव महाकवि भवभूति ने "उत्तररामचरितम्" में व्यक्त किया है : -----

"कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम्"।

पति के अमंगल की कल्पना से ही पत्नी भयभीत हो जाती है। उसका मन चंचल हो उठता है। पति की रक्षा के लिए समस्त बाधाओं को त्याग कर वह स्वयं उसके पास जाती है। गुप्त जी ने यही भाव नारी के रूप में पत्नी का चित्रण करते हुए व्यक्त किया है। जिस समय राम वन में स्वर्ण मृग मारने गये, कुछ ही समय पश्चात् सीता को उनकी कातर ध्वनि सुनाई पड़ी एवं वे विचलित हो उठीं --

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : २०१७ वि० : पृष्ठ १७

२- मैथिलीशरणगुप्त - रत्नावली : २०१७ वि० : पृष्ठ, १६

"सुनकर उसकी कातरोक्ति ही
चंचल हुई चौंक सीता,
क्या जानें, प्रभु पर क्या बीती !
मैं हो उठीं महा भीता"।[१]

\+ + + + + +

"कहा क्रुद्ध होकर देवी ने
घर बैठो तुम, मैं जाऊँ,
जो यों कहकर पुकार रहा है,
किसी काम उसके आऊँ"।[२]

पति के जीवन में पत्नी का बहुत अधिक महत्व है। पति उसके वियोग ज्वाला को सह नहीं सकता। वह अपनी प्राणप्रिया के मिलन के लिए लोगों के कटु से कटु व्यंग्य को भी सह लेता है। रत्नावली नामक खण्डकाव्य में कवि ने पत्नी रत्नावली के मुख से पति तुलसीदास के विषय में कहलाया है :------

"तुमने मेरे लिए फेले न जानें कितने ताने,
लौट- लौट कर आते थे, तुम करके लाख बहानें"।[३]

प्रिय के विरह में पत्नी की अवस्था उन्मना सी हो जाती है। ऐसी अवस्था में वह चेतन और अचेतन तथा मानव और मानवेतर प्राणियों का भेद भी भूल जाती है। विभिन्न जीव से वह पति का सन्देश लाने के लिए प्रार्थना करती है।

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - प्रदक्षिणा : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ४१

२ - मैथिलीशरण गुप्त - प्रदक्षिणा : सं० २०२६ वि० : पृष्ठ ४२

३ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : २०१७ वि० : पृष्ठ २४

पत्नी रत्नावली पपीहे से प्रार्थना करती है : ------

"तू मुझे उनसे मिला दे
प्रिय भूले, मैं नहीं पपीहे, जा सुध उन्हें दिला
मेरा हृदय न सही, जाकर तू उनका हृदय हिला।
पिघला सकता है तेरा स्वर उनकी मन:शिला
तेरी घटा घेर रहेगी, जा तू उन्हें मिला"।

\+ + + + +

"मैं फिर भी उनकी छाया में बैठी थी अनाविला,
किन्तु मुझे शंका होती है, डूबे न यह इला"।१

फिर वह हंस से पति का सुध लाने के लिए कहती है। रत्नावली अत्यन्त कातर स्वर में हंस से प्रार्थना करती हुई कहती है कि यदि वह उसके पति का संदेश नहीं मात्र सुध ही ले आए तो वह उसके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ होगी : -----

हंस कहाँ मैं मोती पाऊँ ?
राजकुमारी दमयन्ती ज्यों क्यों कर तुम्हें चुगाऊँ।
मुझ पर तनिक तरस ही लाओ,
अश्रु-बिन्दु ही लेकर जाओ।
यदि संदेश नहीं तो सुध ही लाओ, मैं बलि जाऊँ।
हंस कहाँ मैं मोती पाऊँ ? २

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ४२
२ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ४५

पति कहीं भी रहे, पर पत्नी को सदैव उसकी चिन्ता बनी रहती है। उसको किसी प्रकार का कष्ट न हो यही उसकी इच्छा रहती है। तपस्या के लिए पति के घर से चले जाने पर पत्नी रत्नावली के मुख से गुप्त जी ने यही भाव व्यक्त किया है :--------

"चलते! धरती पर पैर धरोगे कैसे ?
आंधड़ में पड़कर सांस भरोगे कैसे ?
छाया भी छाया नहीं छोड़ती तक को,
प्रिय, तप की तृष्णा तृप्त करोगे कैसे ?"[1]

सहधर्मिणी सर्वदा पति के ध्यान में लीन रहती है। इसलिए वह पति के विरह में भी पति को अपनी कल्पना में यथार्थ के समान ही देख लेती है। रत्नावली कहती है : ------

"तुम देखो और न देखो,
        मुझको न आप अपने को,
मैं तुम्हें देखती हूँ यों
        मानो यथार्थ सपने को।
झोंका है झुलस तुम्हारा
        तन हुआ झांवरा सारा।"[2]

पति के विरह में पत्नी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। उसे प्रतिपल प्रिय के आगमन की आस लगी रहती है। रत्नावली कहती है :--------

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ३७
२ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ३६

"क्या मेरे प्रिय भी आवेंगे ।
मुझे पूर्व सा अपनावेंगे ?
और समय कब होगा उसका, यह मैं जान न पाई ।
कादम्बिनी समय से आई ।"१

पत्नी धैर्य की खान है । वह पति के वियोग को सहने के लिए अपने मन को नाना प्रकार से सांत्वना देती है । रत्नावली पति के विरह में मन को दिलासा देती हुई कहती है :----------

"मन आर्त न हो तुम ऐसे,
क्या जाने, कितने जन कितना सहते हैं क्या कैसे ?
अनुभव करो दूसरों को तो अपना दुःख घटेगा,
नहीं एक के ही सिर माथे यह आकाश फटेगा ।
कट जावेंगे कुदिन तुम्हारे भी औरों के जैसे ।
मन आर्त न हो तुम ऐसे ।"२

पत्नी पति को शुभ एवं पुण्य कर्म करने के लिए अपने से दूर रहने के लिए कह तो देती है, परन्तु उसका विरह वह सह नहीं पाती है । उसके विरह में उसकी पूर्व स्मृतियाँ जागृत हो उठती है : -----

"जो तुम्हारे प्यार में कल तक पली,
किंकरी भी आज क्या रत्नावली ?

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ४०
२ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ६१

फूलकर कुम्हला चली मेरी कली,
लौटकर फिर तुम न आये हे अली ।[1]

\+ \+ \+

यह तनु अब कैसे सहे,
    जिसे तुमने रह- रह सहलाया,
यह मन यौवन- धन वही
    जिसे तुमने बहु विध बहलाया ।[2]

पति द्वारा सुध न लेने पर पत्नी स्वभावत: क्षुब्ध होती है :-----

फिर तुमने सुध भी न ली
    न तो कुछ कहा और न कहलाया,
घुली भीतर सब सृष्टि
    दृष्टि ने बाहर क्या बहलाया ।[3]

पत्नी पति की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है :-----

तुम्हारे रक्षक हों वे राम,
जिनके लिए लेना ही था लंका का संग्राम
कृपा करें तुमपर पहले ही
पूज्य पवननन्दन पविदेही ।[4]

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ २५
२ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ २६
३ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ २६
४ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ १९

रत्नावली पति के मंगलार्थ अपने स्वार्थ का त्याग करने में हिचकिचाती नहीं। कुत्र स्वार्थ की पूर्ति के लिए या किसी महत् कार्य के लिए वह अपने वैयक्तिक सुखों का सहर्ष त्याग कर सकती है प्रथमत: पति के विरह अभाव में मन दु:खी हो जाता है, किन्तु पति की सफलता विषयक बातें सुन - सुन कर क्षुब्ध मन पुलकित हो उठता है : --------

"रत्नावली तो जीत गई है निज सब कुछ का एक दाँव।
स्वार्थ भले ही रोया - झींका,
मैंने अपनाया उन्हीं का
देखा शुभ भविष्य, देखेगा उसको घर - घर गाँव - गाँव।"[1]

गुप्त जी के महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों में हिन्दू पति - पत्नी के उज्ज्वल पक्ष की झाँकी अतिशय मुखर हो उठी है। इस प्रसंग में उन्हें भारतीय परम्परा और आदर्श का संदेश - वाहक एवं ज्योति स्तम्भ माना जा सकता है।

---

१ - मैथिलीशरण गुप्त - रत्नावली : सं० २०१७ वि० : पृष्ठ ७६